सामयिक प्रकाशन

समाज और इतिहास

नवीन श्रृंखला

14

मौखिक परंपरा में प्रवसन : परिवर्तन और निरंतरता

धनंजय सिंह

जूनियर फेलो, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय,
तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
2018

NMML Occasional Paper

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© धनंजय सिंह, 2018
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग, पुनरोत्पादन किसी भी रुप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखक के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरुपेण अथवा अंशतः, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : director.nmml@gov.in

आईएसबीएन : 978-93-84793-12-8

पृष्ठ सज्जा : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

मौखिक परंपरा में प्रवसन : परिवर्तन और निरंतरता*

धनंजय सिंह

मौखिक परंपरा के भीतर सांस लेते इतिहास को निकालने का जो कुछ भी अध्ययन हुआ है, वह बहुत कम एवं एकांगी है। अधिकांशतः उपनिवेशवादी एवं राष्ट्रवादी है, विशेष रूप से भोजपुरी क्षेत्र से प्रवसन के संदर्भ में। प्रवसन से प्रभावितों के लिए सिर्फ सुख ही सुख, सफलता ही सफलता या फिर दुख, शोषण जैसे पद ही प्रयुक्त हुए हैं। उनकी सफलता एवं त्रासदी की जटिल कहानी नहीं सुनाई गई है। भोजपुरी की मौखिक परंपरा और इतिहास के संबंधों को समझने के दौरान मुझे उनके जीवन के दोनों ही पक्ष मिले। जो उनकी संस्कृति और इतिहास के तनावों से निर्मित हुआ है। लोकसंस्कृति में जो एक दूरस्थ और अप्रासंगिक अतीत (और बहुत कुछ वर्तमान के भी) कुछ परस्पर विरोधी प्रमाणों का एक समूह चित्र प्रतीत होता था। उस धूमिल होते हुए अतीत एवं वर्तमान को जानने की मेरी तीव्र जिज्ञासा रही है। यह मौका मुझे सन् 2004 में मिला, जब मैंने अपना डॉक्टरल शोधकार्य दिल्ली विश्वविद्यालय में शुरू किया और उन्हीं दिनों सराय/सीएसडीएस एवं वी. वी. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान जैसी अकादमिक संस्थाओं में इस सिलसिले में कुछ परियोजना कार्य किया। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में भी लिखित दस्तावेज़ों एवं मौखिकता का अध्ययन किया और अब जब तीनमूर्ति फेलोशिप पर काम कर रहा हूं तो इस संबंध मेरे अनेक आग्रह एवं भ्रम टूटे हैं। कुछ अनछुये तथ्यों से नये तर्क बने हैं। कुछ प्रचलित अवधारणाएँ झूठी साबित हुई हैं। जैसे, भोजपुरी प्रदेश

* 13 जुलाई, 2015 को नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में दिए गए व्याख्यान का संशोधित संस्करण।

से केवल औपनिवेशिक दिनों में ही प्रवास हुआ। जबकि भोजपुरी मौखिक परंपरा में प्रवसन–संबंधों से निर्मित बनिजिया और सिपहिया जैसी लोकसंस्कृति उपनिवेश के पहले से मौजूद हैं। दूसरे यह कि भोजपुरी लोकसाहित्य केवल ग्रामीण लोकसंस्कृति का उत्पाद है या फिर 'भोजपुरी लोकगाथाएं केवल शहरी संस्कृति की उत्पाद हैं।'[1] जबकि वास्तविकता दोनों के सह–उत्पाद के रूप में है। तीसरे यह कि भोजपुरी प्रदेश की सभी जातिया शौर्यभावों से पूर्ण होती हैं। जबकि कोयरी–महतो एवं किसानों की कुछ सहयोगी जातियां जैसे नाई, कुम्हार इत्यादि बेहद शांत स्वभाव वाली जातिया रही हैं। आज राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य बदलने से इनके जातीय चरित्र में बदलाव आ गया है। इनके उत्पीड़न सहन करने के बारे में जो लोक मुहावरे प्रचलित थे, जैसे कि 'कोयरी के देवता'। अब यह केवल मुहावरों में ही जीवित हैं। अब ये जुमले इनके लिए नहीं कहे जाते हैं। बल्कि उन व्यक्तियों के लिए कहा जाता है, जो उत्पीड़न का विरोध नहीं कर पाता है।

लोकसाहित्य एवं स्मृतियों के भीतर प्रवसन संबंधों का अध्ययन जितना दिलचस्प है उतना ही जटिल भी। दिलचस्प इसलिए कि मौखिक परंपरा में विशेष रूप से लोकगीतों में प्रवसन को ऐतिहासिक संदर्भों में यानि उनके प्रवास काल एवं प्रवास प्रकृति की दृष्टि से अवलोकन करते हैं तो यह तर्क ख़ारिज हो जाता है कि भोजपुरी समाज भूमि से बंधा हुआ समाज रहा है या दुनिया का खोजी नहीं रहा है। लोकगाथाओं एवं लोकगीतों में प्रयुक्त अधिकांश पद संकेत करते हैं कि सदियों से भोजपुरी समाज मजबूरी ही नहीं, बल्कि बेहतर अवसरों की तलाश में एक ज़गह से दूसरी ज़गह भटकता रहा है। प्रवसन की यह गतिशीलता पूरे भारतीय समाज पर भी लागू होती है।[2] और जटिल इसलिए कि एक तो मौखिक परंपरा को लोक जीवन का पूरी तरह प्रतिबिम्बन मानकर

---

[1] कैथरिन सरवन श्रेइबर, द ट्रांसमिशन ऑफ भोजपुरी एपिक्स टूवर्ड्स नेपाल एंड बेंगाल *ओरल परफोरमेंस एंड सेलिंग ऑफ चैपबुक्स,* (सपां. मॉली कौशल, चांटेड नैरेटिव्स द लीविंग 'कथा वाचना' ट्रेडीशन, आई जी सी एन ए, दिल्ली), पृ. सं. 43–91. उन्होंने लिखा है–"This is also to break with the idea that the gatha is the product and it is the sign of vitality of an urban culture which has kept its specificity and strength".

[2] मोतीचंद्र, *सार्थवाह,* (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 1953), 52–67. ब्रिज वी लाल, *फिजी यात्राः आधी रात से आगे,* (दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, 2005)

चलने पर समय, स्थान एवं सामाजिक परिवर्तन की पकड़ कई जगहों पर ढीली पड़ जाती है। वह जीवन एवं घटनाओं का सीधा प्रस्तुतीकरण ही नहीं बल्कि प्रति–प्रस्तुतीकरण भी है। इस प्रक्रिया में उसमें अनेक ऐसे तत्व प्रवेश कर जाते हैं जो उसके सामाजिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन में साधक न होकर बाधक हो जाते हैं। इसलिए लोकसाहित्य को इतिहास के निकट लाना और इतिहास को लोकसाहित्य के पास ले जाना एक नया बौद्धिक श्रम की मांग करता है। यह अतिरिक्त बौद्धिक श्रम अध्ययन की प्रविधि विशेष को लेकर है। बेशक मौखिक परंपरा की परिभाषा सरल नहीं है, वह भी किसी खास विषय को लेकर। निःसंदेह परंपरा के साथ अनेक जटिल सवाल जुड़े हुए हैं। शाब्दिक अर्थ में ऐसे सब विचार, विश्वास, प्रथाएं, व्यवहार, जीवन–मूल्य इत्यादि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिये जाते हैं, परंपरा के दायरे में आते हैं। इन्हीं तत्वों में परिवर्तन एवं निरंतरता की प्रवाह से परंपरा अस्तित्वान बनी रहती है।

भारतीय इतिहास में भोजपुरी प्रदेश श्रमिक उत्पादन के लिए बहुत सस्ता एवं उर्वर क्षेत्र रहा है। आजीविका की खोज में इस क्षेत्र से लोगों का सुदूर प्रदेशों में प्रवसन–प्रक्रिया का साक्ष्य मध्यकाल से ही मिलता है। इस प्रदेश से जितने भी प्रकार के लोगों का प्रवसन हुआ है, उनमें श्रमिकों, सैनिकों और छोटे व्यापारियों का प्रवसन प्रमुख रहा है। वस्तुतः ये तीनों मध्यकाल में व्यापारिक उन्नति की उपज थे। यहाँ एगेंल्स की उस बात का उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा, जिसे उन्होंने युरोपीय पुर्नजागरण के संदर्भ में कहा था कि जब व्यापार में क्रांति शुरू हुई तो सामंती ढ़ाँचा कुछ कमजोर पड़ा और सामंती ढाँचे में दबे हुए किसानों व कारीगरों को करवट बदलने का मौका मिला। यही स्थिति क्या मध्यकालीन भारत के संदर्भ में भी लागू नहीं होती है? इन्हीं किसानों व कारीगरों के भीतर से छोटे–छोटे व्यापारी निकले, सैनिक जवान निकले और बाहर जाकर श्रम करने वाले श्रमिक निकले। इस नये स्वतंत्र वर्ग ने अपनी भूमिका की पहचान कर ली थी। कालांतर में इसने तमाम तरह के आंदोलनों को जन्म भी दिया। इससे देश की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों में बदलाव आया। मध्यकाल में इन्हीं लोगों की सबसे अधिक जनसंख्या थी। इस तथ्य की ओर आर्थिक इतिहासकार ए. आई. चिचेरोव का भी ध्यान गया है। उन्होंने लिखा है– ''सामंतकालीन भारतवर्ष में सबसे अधिक जनसंख्या कारीगरों, व्यापारियों और तरह के

मजदूरों की थी। इस जमाने में इनकी बड़ी वृद्धि हुई।''[3] औपनिवेशिक दौर में इनके प्रवसन की परंपरा अपने चरम पर पहुँच गयी थी। आज भी इस क्षेत्र से प्रवास करने की वास्तविकता उसी मात्रा में जारी है—अंतर्देशीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, दोनों ही स्तर पर। लेकिन यह अधिकतर तीसरा वर्ग यानी श्रमिकों का है। परदेस में इस तीसरे वर्ग के कई श्रमिकों ने अपने पंरपरागत पेशे के अनुकूल काम किया तो कुछेक ने नये पेशों को चुना। उपनिवेश के दिनों में इनका आंतरिक प्रवसन कलकत्ता, असम, झरिया, धनबाद, मोरंग, नेपाल में हुआ था और बाहरी प्रवसन के लिए अंग्रेज इन्हें बर्मा, सिंगापुर, मॉरीशस, फिजी, गुयना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, युगांडा, नेटाल, वेस्टइंडीज, सूरीनाम, नीदरलैंड, मेडागास्कर इत्यादि अपने औपनिवेशिक देशों में ले गये थे। आज दिल्ली, पंजाब, सूरत, अहमदाबाद, वापी, मुम्बई जैसे इलाके भोजपुरिया मजदूरों के लिए प्रवसन क्षेत्र बने हुए हैं और बाहरी प्रवसन के तहत पिछले दो—तीन दशकों से इस क्षेत्र से दुबई, सउदी अरब जैसे खाड़ी देशों को सस्ते मजदूर उपलब्ध हो रहे हैं। भोजपुरी श्रमिकों के प्रवसन की यात्रा बहुत लंबे समय से एक बड़ी वास्तविकता रही है। मौखिक पंरपरा ने इनके प्रवसन को अपने भीतर मौलिक रूप में अभिव्यक्त किया या इसे यूँ कहें तो शायद ज्यादा सही होगा कि इन लोगों ने अपने अनुभवों को सृजनात्मक रूप देकर लोक की मौखिक परंपरा को समृद्ध किया।

भोजपुरी प्रदेश से होने वाले प्रवसन ने संस्कृति के दायरे में आने वाले रस्म रिवाज, संस्कार, विश्वास, गीत—गाथा, नृत्य—नाट्य, कथा—कहानी, देवी—देवता इत्यादि को प्रभावित ही नहीं किया बल्कि बहुत कुछ नये सिरे से उन्हें पैदा भी किया है। जिनमें से तीन मौखिक परंपराएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—एक, बनिजिया लोकसंस्कृति, दूसरी, सिपहिया लोकसंस्कृति और तीसरी, बिदेसिया लोकसंस्कृति। इनकी एक लम्बी मौखिक परंपरा रही है। इस मौखिक परम्परा ने जिन लोगों की प्रवसन यात्रा एवं परदेसी अनुभवों को अपनी गोद में सहेजा है। उन्हें यदि भोजपुरी की मौखिक पंरपरा में से निकाल दिया जाए तो उसका आधा से ज्यादा भाग खाली हो जाएगा।

---

[3] ए. आई चिचेरोव, *मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना,* (अनुवाद—मंगलनाथ सिंह, दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, 2003), पृ. सं. 133।

यह शोध-पत्र प्रवसन और मौखिक परंपरा के अंतःसंबंधों के कई पहलुओं पर चर्चा करता है। भोजपुरी मौखिक परंपरा में प्रवसन की समझ किस रूप में है, प्रवास–काल को कैसे पकड़ सकते हैं, श्रम रूपों की अभिव्यक्ति किस रूप में है, कौन–कौन से प्रवास–स्थान रहे हैं या बन रहे हैं, प्रवसन की कौन–सी प्रथाएँ रही हैं, प्रवास हेतु आवागमन के साधनों की सूचना कैसे मिलती है। इसके साथ ही देस–परदेस में संवाद के लिए संचार माध्यम और प्रवास–प्रक्रिया के दौरान् भोजपुरी लोकसमाज के संस्कारों, लोकविश्वासों, मान्यताओं, धारणाओं इत्यादि में हुए परिवर्तन और निरंतरता किस रूप में रही है। इन सवालों की खोजबीन के लिए मैंने इतिहास से मौखिक परंपरा में और मौखिक परंपरा से इतिहास में आवाज़ाही करने का प्रयास किया है।

मौखिक पंरपरा ने प्रवसन को लेकर जिन धारणाओं की समझ पैदा की है, वो हैं– प्रवसन अपनी जड़ से उखड़ने, अपने आत्मीय लोगों से बिछड़ जाने, गाँव में अधिक मात्रा में श्रम करने, फिर भी श्रम का ठीक से मूल्यांकन न हो पाने, प्रवास के भूगोल व समाज–संस्कृति से अनजान रहने, परदेस में अजनबीपन महसूस करने के संदर्भ में आता है। प्रवसन से उत्पन्न होने वाली सुखद स्थितियों को भी अभिव्यक्ति मिली है। लेकिन मौखिक परंपरा ने अधिकांशतः प्रवसन संबंधों को *विलेन* (नकारात्मक) रूप में ही देखा है। बेशक प्रवसन के परिणामस्वरूप ही भोजपुरी समाज अपनी जीविकोपार्जन के लिए सक्षम हुआ है।

आइये, पहले हम बनिजिया, सिपहिया और बिदेसिया लोकसंस्कृति को सिलसिलेवार रूप में समझने की कोशिश करते हैं–

बनिजिया लोकसंस्कृति

प्रवास करके किसी भी चीज के व्यापार करने वाले को भोजपुरी लोकसंस्कृति में 'बनिजरवा' नाम से जाना गया है और उसकी व्यापारिक–क्रिया को 'बनिजिया' कहा गया है। वस्तुतः बनिजिया शब्द व्यापारिक–प्रक्रिया का भोजपुरीकरण है। बनिजरवा को भोजपुरी लोक परंपरा ने 'सवदागर', 'वैयपारी', 'बनजरवा' इत्यादि नामों से भी

संबोधित किया है। हालांकि बंजारा[4] नामक एक जाति भी है जो घुमंतू जाति के रूप में जानी जाती है।

भोजपुरी प्रदेश हमेशा से विपन्न नहीं रहा है। अंग्रेजों का आगमन और उनके द्वारा देशी उद्योगों को पूरा चौपट कर देने से पहले यह प्रदेश न केवल अपनी जरूरत का पर्याप्त कपड़ा बना लेता था। बल्कि देश–विदेश में उसका निर्यात भी करता था। पटना का मलमल, सूती वस्त्र, अफीम, नील, गन्ना, सरसों तेल, चावल इत्यादि बहुत प्रसिद्ध था। सिवान का रोगन, शाहाबाद का कंबल, कागज, कपड़ो की बुनकरी,[5] गाजीपुर का इत्र, गोरखपुर का तम्बाकू, मुज्जफरपुर की चाकू और टोकरियाँ, मिर्जापुर का पीतल, ताँबा, छोटे–छोटे कारपेट, चुनार का चून्ना–पत्थर, मोर्टार, बनारस की सिल्क–साड़ी इत्यादि उत्पादों से यह प्रदेश आबाद था। लौह–अयस्क एवं नमक भी इस प्रदेश में बनता था। लेकिन सबसे अधिक लाभदायक था – सोरा उद्योग, पशु–निर्यात और तेल तथा अनाजों का उत्पादन। इन सभी उत्पादनों का व्यापार इस क्षेत्र से बड़े पैमाने पर होता था। इन उत्पादों के व्यापार करने जा रहे व्यापारियों के साथ घूमंतू गायक भी जाते थे।

---

[4] वस्तुतः बनजारा कहते ही हमारी आंखों के सामने 'गीत गाने वाला' रंगारंग साफा पहने, घनी मूंछें और प्रायः सफेद धोती–कुर्ता पहने पुरूष और घाघरा–ओढ़नी तथा कांच लगी कंचुली पहने, नथ, कड़े, गले में आभूषण पहने स्त्री का चित्र उभरता हैं। उनके सिर में एक छड़ खोंची हुई होती है। बंजारा समाज का जीवन रंगों और गीतों से लबालब भरा है। इस बनजारा शब्द की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। ***एक मत,*** बन+जारा शब्द का विग्रह करते हुए संस्कृत के वन+चर शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानता है। आर. वी. रसेल तथा राय बहादुर हीरालाल, केशव फालके, मोती राम राठौड़ का यही मत है। ***दूसरा मत,*** इर्विन जैसे विद्वानों का है जो मानता है कि बनजारा फारसी के 'ब्रिंज' शब्द से बना है। फारसी में ब्रिंज चावल को कहा जाता है। आरा शब्द 'आबुर्दन' से बना है, जिसका अर्थ है– लाना। मतलब चावल लाने वाला बनजारा होता है। ***तीसरा मत,*** जो कि भ्रामक है। वन+जारा अर्थात् वन को जलाने वाला। वैसे ही फारसी की व्युत्पति भी भ्रामक है। कारण है– भारत के बनजारे चावल का व्यापार नहीं करते। ***चौथा मत,*** बनजारों के लिए लभाण शब्द भी मिलता है, जिसका अर्थ है–लवण का व्यापारी। बैलों पर लादकर प्रांत–प्रांत बेचने वाला समाज बनजारा होता है। ***पांचवा मत,*** बनजारा लोग सेना को खाद्य सामग्री (रसद) पहुंचाने का काम भी करते थे। बनजारा किसी जाति विशेष की संज्ञा न होकर संपूर्ण घुमंतू समुदाय का परिचायक है।

[5] एस.एस.ओ. मैले, *बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, शाहाबाद,* (कलकता : द बंगाल सेक्रेटेरियट बुक डिपो, 1906), पृ. सं 92–97।

तिब्बत वगैरह से लौटते वक़्त व्यापारी तराई की सड़कों से होते हुए जिन वस्तुओं का व्यापार करते थे, उनमें मस्क (कस्तूरी), सफरन, शहद, ऊनी कपड़े एवं तिब्बतियन कारपेट प्रमुख थे। उन दिनों दो तरह की व्यावसायिक गतिविधियाँ चल रही थी। एक तो संपन्न बनियों एवं तेलियों का व्यवसाय था, जो मुख्यतः अनाज एवं तेल का व्यापार करते थे। लगभग सभी की दो दुकानें होती थी। पहली भोजपुरी प्रदेश में और दूसरी नेपाल या बंगाल में। वे अपने काफ़िलों से वस्तुओं को लाते थे। जो दूसरे थे, वे छोटे पैकार थे। होरे पैकार बड़े व्यापारियों के साथ सड़कों के किनारे–किनारे व्यावसायिक वस्तुओं को पीठ पर, झोली में लादकर चलते थे। पीठ पर लदी झोलियों में छोटी–छोटी वस्तुएँ होती थी, जैसे–ऐनक, कंघी, सुई, रूमाल, फैंसी गहनें, रिब्बन, मोमबत्तियाँ इत्यादि। हिन्दुस्तान–नेपाल के व्यापार पर अध्ययन करने वाले जॉहर सेन का मानना है कि '19वीं सदी के दौरान् भारत–नेपाल की जो विशेष व्यावसायिक सड़क थी, उस पर भारतीय एवं नेवारी व्यापारियों के बीच दुश्मनी रहती थी। तराई एवं काठमांडू घाटी के शहरों के भारतीय व्यापारियों के बीच पंजाब के सिक्ख एवं राजस्थान के मारवाड़ियों का महत्वपूर्ण स्थान था। नेपाल और भारत के बीच होने वाली व्यापारिक गतिधियों में भोजपुरिया व्यापारियों की छवि कभी हस्तक्षेपी नहीं रही है। सच तो यह है कि इसके लिए उन पर ध्यान ही नहीं दिया गया। लेकिन यह बात सुखद है कि उसकी भौगोलिक स्थिति और उद्यमिता के प्रति उनका मनोबल सदा बना रहा।'[6]

यह तथ्य सर्वविदित रहा है कि भोजपुरी प्रदेश से पूरब दिशा (बंगाल, असम, कलकता, मोरंग जैसे क्षेत्रों) में व्यापारियों का विविध प्रकार के सामानों का व्यापारिक चलन रहा है। यह व्यापारिक चलन भारतीय इतिहास में मध्यकाल से लेकर अंग्रेजी राज होते हुए आज़ाद भारत के कुछेक दशकों तक रहा।[7] इन व्यापारियों के साथ घुमंतू गायक भी जाते थे जो उनका मनोरंजन करते थे। इन्हीं गायकों के गाथा–गायन

[6] जॉहर सेन, *इंडो–नेपाल ट्रेड इन द नाइनटिन्थ सेंचुरी,* (कलकता : फर्म केएलएम प्रा. लि., 1977)।

[7] जार्ज ए. ग्रियर्सन द्वारा संपादित *'द गीत नयका बनजारा'* लोकगाथा में मध्यकालीन व्यापारिक संस्कृति को पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है और फिर भोजपुरी प्रदेश में बनिजिया की एक लंबी लोकपंरपरा रही है।

(लोरिकायन, सोरठी बृजाभार, राजा भरथरी की गाथा, राजा गोपीचंद की गाथा, सती-बिहुला की गाथा, हिरनी–बिरनी उर्फ़ राजा पोसन सिंह के गीत, रेशमा चुहणमल के गीत, क्षत्री घुघुलिया के गीत, झरेलवा के गीत, बिहुला बिषहरी उर्फ बाला लखंदर के गीत, लचिया रानी के गीत, शोभनायक बनजारा के गीत, रानी सारंगा के गीत, वीर कुंवर विजई, कुंवर सिंह के पंवारा इत्यादि) से प्रवासी भोजपुरिया व्यापारियों की स्थिति एवं उनकी नैतिक मनोदशाओं का पता चलता है।

आइये, देखते हैं कि भोजपुरी की मौखिक पंरपरा में बनिजिया की अभिव्यक्ति किस रूप में है। एक लाचारी गीत[8] है जो अपने विधागत अंतर में ठुमरी विधा में भी उसी विषय की पहल करता है–

"पिया मोरे गइले हो पुरूबि बनिजिया। अहो राम! दे गैलन ना।।
एक सुगना भदेसवा, से देई गइले ना।।
खाय के मांगे सुगना दुध भात खोरिया से, सुते के मांगे ना।
दुनो जोबना के बीचवा, सुते के मांगे ना।।
आधि–आधि रतिया सुग्गा पछिले पहरवा से, कुटके लागे ना।
मोर चोलिया के बंदवा से, कुटके लागे ना।।
एक मन होला सुग्गा भूंइया रे पटकति, दूसर मनवां ना।
मोर हरि के खेलवना से, दूसर मनवां ना।।
उड़त–उड़त सुगना गइले कलकतवा से, जाके बइठले ना।
मोरा सामीजी के पगिया से, जाके बइठले ना ।।
पगरी उतारी सामी जाँधि बइठले से, कि कह सुगना ना।
मोरा घर के कुसलतिया से, कि कह सुगना ना।।
'माई तोरी कुटनी, बहिनी तोरी पिसनी कि जइया कइली ना।
तोर दउरी दोकनिया कि, जइया कइली ना।।'"[9]

---

[8] इसे अलचारी गीत भी कहा जाता है। लोकगीत का रूप है। लाचारी से शाब्दिक रूप में स्पष्ट है कि शुरु में इसे लाचारवश में होकर गाया गया होगा। लाचार की स्थिति पति के परदेश गमन की वजह से है।

[9] हूज फ्रेजर, *द फोकलोर फ्रॉम इस्टर्न गोरखपुर (न्यू)*, (कलकता, जॉरनल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग–1, सं. 1, 1883), पृ. सं. 7–8, इसे भी देखिये, कृष्णदेव उपाध्याय, *हिन्दी प्रदेश के लोक (ग्राम) गीत*, (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा. लि., 1990), पृ. सं. 100–101, और इसे भी देखा जा सकता है– बेचनराम राजभर गायक, भोजपुरी लाचारी, पारंपरिक लोकगीत (नोएडा : टी–सीरिज सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज़ लि., 1995), साईड ए, तीसरा गीत।

अर्थात् प्रिय एक सुग्गा देकर पूरब देश चला गया। यहाँ अब सुग्गा खाने के लिए दुध–भात माँगता है और उस बिरहिणी नारी के दोनो 'जोबन' के बीच सोना चाहता है। जब वह उसे वहाँ सुलाती है तो आधी पहर रात को उसके चोली के बंधनो को कतरने लगता है। उसका एक मन होता है कि उसे पटक कर मार दे लेकिन दूसरी ओर सोचती है कि वह उसके स्वामी का खिलौना है, उसे कैसे मार सकती है। गीत का पूरा वातावरण सामंतकालीन है। सुग्गा उड़ते–उड़ते कलकत्ता स्वामी के पास पहुँच गया। स्वामी ने पगड़ी उतारकर जाँघ पर बैठाया और घर का कुशल–मंगल पूछा। सुग्गा ने बताया कि उसकी माँ दूसरों के घर अनाज कुटने का काम करती है और बहन पीसने का जबकि पत्नी ने दुकान खोल लिया है। प्रवासी पति के लिए माँ–बहन द्वारा किसी के घर में अनाज कुटना–पीसना, कदाचित थोड़ा–बहुत सह्य हो भी सकता है परंतु पत्नी द्वारा दुकान खोल लिया जाना, असह्य है। सामंती परिवेश में नारी का बाज़ार में प्रवेश करना सामाजिक दृष्टि में हेय था।

भोजपुरी की लोक–गाथाओं व गीतों में वर्णित समाज व संस्कृति एवं उन्हें गाने वाले गायकों को जातीय दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि इस प्रदेश से व्यापारियों ने अधिकांशतः अपने जातीय पेशे के अनुकूल ही उत्पादों का व्यापार किया है। मसलन, अहीर माल–मवेशियों एवं दूध–घी का व्यापार करते थे, तेली अनाजों का, नोनिया सोरा (Saltpetre) का, नेटुआ शहद इत्यादि का, भेड़िहार कंबल का, मल्लाह अपनी नावों से दूसरे व्यापारियों का समान ढ़ोते थे, इत्यादि। ये जातियाँ बहुत छोटे स्तर पर अपने उत्पादों का व्यापार करती थी, जिसमें उनकी श्रमशीलता ही प्रमुख थी। यहाँ इस बात का उल्लेख करना गैर–वाज़िब नहीं होगा कि आज बनिजिया से संबंधित लोकगीतों की रचना या फिर गायन नहीं हो रहा है। स्पष्ट है कि मौजूदा दौर में इस क्षेत्र में व्यापार की जो संस्कृति है, उसमें इन श्रमिक–व्यापारियों की उपस्थिति लगभग शून्य हो गई है।

सिपहिया लोकसंस्कृति

मध्यकाल से ही भोजपुरिया जवानों का नौकरी की खोज में पश्चिमी पंजाब से लेकर पूर्वी बंगाल तक, अपने घर से बहुत दूर तक सफर

करने के लिखित एवं मौखिक स्रोत मिलते हैं। एक जंतसारी गीत पर गौर करते हैं–

''जेठ बइसखवा के जरती भुभुरिया सुनबे रे नयकवा।
गरमी भिजेले लामी केस सुनबे रे नयकवा।
बाट एक चलत बटोहिया हित भइआ, सुनबे रे नयकवा।
हमरो सनेस हमरे हरीजी से कहिहा, सुनबे रे नयकवा
भेजी दीहे पाँच रंग बेनिया सुनबे रे नयकवा।
तोहरे हरी जी के चीन्हले ना जनले,
कइसे कहब समुझाई, सुनबे रे नयकवा।
हमरी हरीजी के लाली लाली अँखिया,
जइसे चले मुगल पठान सुन बे रे नयकवा।''[10]

अर्थात् ज्येष्ठ–वैशाख की लू से धरती जल रही है। गर्मी से गीत की नायिका (सिपहिया की पत्नी) के केश भींग जाते हैं। वह बटोही नयका से अपने पति के पास संदेश कह रही है कि उसका पति उसके लिए पांच रंगों वाला बेना (हाथ पंखा) भेज दे। नयका प्रवास करके 'बनिज' करता है। इस गीत में बिरहिणी नायिका का पति व्यापारियों के मालों की रखवाली करने वाला सिपाही है। नायिका बटोही नयका को अपने पति की जो पहचान बताती है, उसमें उसका पति मुगल पठान की तरह है। वस्तुतः पति का शारीरिक सौष्ठव मुगल पठान की तरह होना, इस बात को स्पष्ट करता है कि मुगल सेना में पठान सैनिकों की ज्यादा कद्र थी और शारीरिक रूप से वे बेहद सुंदर एवं बलवान भी थे जिसके महत्व को मौखिक पंरपरा तक नजरअंदाज नहीं कर पायी है।

भोजपुरिया जवान आजीविका के लिए बढ़–चढ़कर साहसिक कार्य के लिए शामिल होता था एवं सर्विस की मांग होने पर उपलब्ध हो जाता था। इतिहासकार डी. एच. ए. कोल्फ ने इन मुगलकालीन भोजपुरिया सिपाहियों को एक किसान जमा सिपाही माना है।[11] ये लोग स्थानीय

[10] शाहिद अमीन, संपा. *ए कॉनसाइज इनसाईक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाईफ,* (दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स, 2005), पृ. सं. 392–393

[11] डर्क एच. ए. कोल्फ, *नौकर, राजपूत और सिपाही– द इथनोहिस्ट्री ऑफ द मिलिट्री लेबर मार्केट इन द हिन्दुस्तान, 1450–1890,* (कैम्ब्रिज : सी यू पी, 1990)

जमींदारों के यहाँ दरबान के रूप में सर्विस करते थे। जमींदारों की वज़ह से शेरशाह एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा था। मुगलिया सल्तनत के मिलिट्री श्रम बाजार में इनकी भारी संख्या थी। अकबर के राज्यकाल में या उसके बाद भी भोजपुरी इलाके के स्थानीय जमींदारों का बर्चस्व था। इस मामले में भोजपुरी–उज्जैनिया परिवार अधिक उल्लेखनीय है क्योंकि उन लोगों ने मिलिट्री की ठेकेदारी संभाली हुई थी। इसके साथ ही एक सच्चाई यह भी है कि सिपाही श्रम–बाजार का राजपूतीकरण कर दिया गया था। जिसके बारे में में *डी. एच. ए. कोल्फ ने* बड़ी तफ़सील से ब्यौरेबार विश्लेषण किया है। भोजपुरी प्रदेश का ब्राह्मण, निम्न या पिछड़ी जाति का व्यक्ति भी *'राजपूत'* जाति की *'आईडेंटी'* पर नियुक्त होता था। इस संबंध में विलियम इरविन ने लिखा है कि ''मुगलों के राजत्वकाल में दिल्ली और पश्चिम में, भोजपुरियों– विशेषतः भोजपुरी क्षेत्र के तिलंगों– को 'बक्सरिया' कहा जाता था। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में भोजपुर तथा उसके पास में ही स्थित बक्सर, फौजी सिपाहियों की भर्ती के दो मुख्य केन्द्र थे। 18वीं शती में जब अंग्रेजों के हाथ में देश का शासन–सूत्र आया तब उन्होंने भी मुगलों की परम्परा जारी रखी और वे भी भोजपुर तथा बक्सर से तिलंगों की भर्ती करते रहे।''[12] सिपाही श्रम बाजार में भोजपुरिया जवानों को 'पुरबिया', 'बक्सरिया' एवं 'तिलंगवा' जैसे संबोधनों से जाना जाता रहा है। जिनकी क्रांतिकारी भूमिका भारतीय इतिहास में 17वीं शताब्दी से शुरु होती है और सन् 1857 के संग्राम में 'सैनिक विद्रोह' के रूप में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है। इस सैनिक विद्रोह एवं उनकी मौखिक परंपरा में शौर्य भावों की अभिव्यक्ति के आधार पर ही ग्रियर्सन ने भोजपुरियों को वीर जाति[13] में गिना है।

---

[12] विलियम इरविन, *द आर्मी ऑफ द इंडियन मुगल : इट्स ऑर्गनाइजेशन एंड एडमिनिशट्रेशन,* (मिसीगन : यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमटेड, 1903।)

[13] लेकिन भोजपुरी प्रदेश में कुछ ऐसी भी जातियां हैं, जो समाज एवं इतिहास में बेहद शांत स्वभाव के लिए जानी जाती हैं। जैसे कि कोयरी जाति किसानी करने वाली जाति है। भोजुपरी प्रदेश में जब कोई उत्पीड़न सहन करते रहने के बावजूद किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं करता है, तब कहा जाता है कि 'का तू कोइरी के देवता हव?' इस तरह की और अनेक जातियां हैं जिन्हें शांत स्वभाव का माना जाता है।

कंपनी काल के एक भोजपुरिया सिपाही की गतिशीलता और उसकी पत्नी की लालसा को लेकर एक बेहद लोकप्रिय गीत रहा है–

'पनिया के जहाज से पलटनिया बनि अइह पिया।
ले ले अइह हो, पिया सेनुरा बंगाल से।
पनिया के जहाज से, पलटनिया बनि अइह पिया,
ले ले अइह हो, पिया टिकवा राजस्थान से।
पनिया के जहाज से, पलटनिया बनि अइह पिया,
ले ले अइह हो, पिया झुमका पंजाब से।
पनिया के जहाज से, पलटनिया बनि अइह पिया,
ले ले अइह हो, पिया नथिया बिहार से।''[14]

यह पूर्वी गीत है। इसमें भी पलटनिया सिपाही की गतिशीलता एवं उसकी पत्नी की आभूषण की ख्वाइशों की अभिव्यक्ति हुई है। पत्नी अपने सिपाही पिया से पानी की जहाज से 'पलटनिया' बनकर लौटते समय बंगाल से सिंदुर मांगती है। राजस्थान का टीका, पंजाब का झूमका और बिहार का नथिया जैसे प्रसिद्ध आभूषण मंगा रही है। यहाँ पत्नी को शौक–श्रृंगार की अति लालसा है। यह लालसा आज के गीतों में भी है–*'संइया जात बाड़ पुलिस के बहलिया में, कुछ लेले अइह ललकी रूमलिया में'* लोक गीत में भी भोजपुरिया जवान की पत्नी अपने प्रिय से पुलिस की 'बहाली' से लौटते समय लाल रूमाल में प्रेम–निशानी के लिए कुछ (आभूषण) ले आने की निहोरा कर रही है। औरंगजेब के जमाने में फैंकिस बर्नियर भी लिखता है–*''एक अदना सिपाही भी अपनी पत्नी बच्चों को कुछ न कुछ गहने अवश्य पहनाता है।''*[15] लोकनाटक 'जालिम सिंह नाटक' में एक राजपूत सिपाही की प्रेम कहानी, निम्न–जातीय समाज में विवाह, औपनिवेशिक शासनकाल में ही परिणत होती है। जिस पर आज भोजपुरी की 'संइयाँ सिपहिया' नाम से लोकप्रिय फ़िल्म भी बनी है।

---

[14] शारदा सिन्हा (गायिका), *केकरा से कहाँ मिले जाला,* टी– सीरिज, सुपर कैसेट्स इंडस्ट्रीज लि. नोएडा, उ. प्र., 1985

[15] फैंकिस बर्नियर, *बर्नियर की भारत यात्रा,* अनुवाद–गंगा प्रसाद गुप्त (दिल्ली : एन. बी. टी, 2001), पृ. सं. 139।

मौखिक पंरपरा में भोजपुरियों के शौर्य को जिस रूप में देखा गया है, दरअसल वह सामंती मूल्यों का वाहक है। जो आज भी उसी रूप में मौजूद है। बताने की जरूरत नहीं है कि आज दिल्ली–कलकता से लेकर मुम्बई तक सिक्यूरिटी ऐजेंसियों में लगे बड़ी संख्या में भोजपुरिया जवानों को खासकर ऊँची जातियों को सिक्योरिटी–गार्ड का काम करना अपनी शान के अनुकूल लगता है, लेकिन दैहिक श्रम करना अपमान लगता है। भोजपुरी की मौखिकता ने इस शान को बॉर्डर (सीमा) पर नौकरी करने वाले सिपहियों को इसी रूप में देखा है। बकौल बालेश्वर यादव, 'मरदा मनइया सीमा पर शोभे, मउगा मरद ससुरारी में'। लेकिन पत्नी से प्रेम की अतिशयता को भोजपुरिया समाज मउग (निरहू)[16] के अर्थ में देखता है। यही वजह है कि इस प्रदेश का जवान सिक्यूरिटी या कारखाने में काम कर लेगा, परन्तु वह खाना बनाने या छाड़ू–पोछा इत्यादि से संबंधित कामों में दिलचस्पी नहीं लेता है। दरअसल ऐसी मानसिकता की जानकारी हमें भोजपुरी की मौखिक परंपरा ही देती है।

बिदेसिया लोकसंस्कृति

भोजपुरी लोकपरंपरा में बिदेसिया की परंपरा दो रूपों में दिखाई देती है। एक, बिदेसिया शब्द गिरमिटिया मजदूरों द्वारा आततायी अंग्रेजी सरकार को संबोधित है और दूसरे, बिदेसिया शब्द पत्नी द्वारा अपने पति को संबोधित है, जो अपनी पत्नी को गाँव छोड़कर बाहर कमाने चला गया है। कुली प्रथा के तहत हुए प्रवसन को लेकर एक गीत है–

"भोली हमें देख अरकाटी भरमाया हो,
कलकत्ता पार जाओ पांच साल रे बिदेसिया।
डीपुआ में लाए पकरायी कागदुआ हो,
अंगुठवा लगाए दीना हाय रे बिदेसिया।

---

[16] भोजपुरी मौखिक पंरपरा में 'मउग' पद का व्यवहार दो अर्थों में हुआ है। एक, यदि पुरूष स्त्रैण व्यवहार करता है और दूसरे, यदि कोई पुरूष अपनी पत्नी को अतिशय प्रेम करता है, हमेशा अपनी पत्नी की सेवा में लगा रहता है। इस तरह के पुरूष को मौखिक पंरपरा 'निरहू' का भी संबोधन करती है। भोजपुरी सिनेमा में अभिनेता दिनेश लाल (निरहुवा) ने अपने गीतों और फिल्मों को एक निम्नवर्गीय सांस्कृतिक विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। हालांकि निम्नवर्गीय समाज में भी शौर्य एवं मर्दानगी की समझ सामंती ही है।

पाल के जहजुआ में रोई–धेई बैठी,
कैसे होई कालापानी पार रे बिदेसिया।
आई घाट देखा, जब फिज़ीया के टापुआ हो,
भया मन हमरा उदास रे बिदेसिया।
काली कोठरिया में बीते नाही रतिया हो,
किसके बताईं हम पीर रे बिदेसिया।
दिन रात बीती हमरी दुख में उमरिया हो,
सूखा सब नैनुआ के नीर रे बिदेसिया।
खून पसीने से सींचे हम बगिया,
बैठा–बैठा हुकुम चलाए रे बिदेसिया।
फिरंगिया के रजुआ में छूटा मोरा देसुआ,
गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया।
कुदारी, कुरबाल दीना, हाथुवा में हमरे हो,
घाम में पसीनवा बहाए रे बिदेसिया।
खेतवा में तास जब देवे कुलम्बरा हो,
मार–मार हुकुम चलाए रे बिदेसिया।
सब सुख–खान सी. एस. आर. की कोठरिया,
छः फुट चौड़ी, आठ फुट लंबी,
उसी में धरी है कमाने की कुदरिया।
उसी में सील और उसी में चूल्हा,
उसी में धरी है जलाने की लकड़िया।
उसी में महल, उसी में दुमहला,
उसी में बनी है सोने की अटरिया।
सब दुख–खान सी. एस. आर. की कोठरिया।
यहीं में खाना, यहीं में सोना,
यहीं में बहत पनरिया।
पास खड़ा सरदरवा देखे
सर पै हरदम हनत कुदरिया।
मूड़ फटत है, देह दुखत है,
टूटी जावै सबकी कमरिया।[17]

[17] धीरा वर्मा (लेख), *गगनांचल,* (त्रैमासिक पत्रिका), (दिल्ली : भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, अप्रैल–जून 2000), पृ. सं. 208

यह लंबा लोकगीत फिज़ी का है। इसमें बिदेसिया अंग्रेज हैं, न कि प्रवासी मजदूर। पता नहीं यह गीत कब लिखा गया होगा, परंतु गीत का जो विषय वस्तु है वह सन् 1834 से 1920 तक जारी रही कुली प्रथा पर है। संभवतः यह गीत भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान् लिखा गया होगा। इस गीत में फिज़ी में 1879 ई. गये मजदूर अपनी दर्दभरी दास्तान गाते हुए कहते हैं कि अरकाटी ने हमें भोला–भाला जानकर छल से कलकत्ता डिपो भेजा, जहाज में ठूँस–ठूँसकर लादा और *फिज़ी* द्वीप भेज दिया। अब यहाँ हाड़तोड़ मेहनत कर रहे हैं। ऊपर से हमें कुलंबरों के कोड़ों की मार सहनी पड़ रही है। यहाँ 'अरकाटी', रिक्रूटर्स (Recruiters) शब्द का भोजपुरीकरण है। अनुबंध–प्रथा को बहाल किये जाने में इन अरकाटियों की बड़ी भूमिका थी। वस्तुतः इनकी कई श्रेणियाँ थीं। कुछ अरकाटी सरकारी थे, कुछ अर्द्ध–सरकारी थे तो कुछ अरकाटी कमीशन पर थे।[18] बहरहाल, लोकगीतों या अन्य साहित्यिक[19] स्रोतों के अवलोकन से पता चलता है कि बहुत सारे मजदूरों को इन अरकाटियों द्वारा गुमराह करके कलकत्ता भर्ती डिपो लाया जाता था और वहाँ से फिर उन्हें गन्ना बागान वाले उपनिवेशों में भेज दिया जाता था। यहां बड़ा दिलचस्प सवाल उभर रहा है कि क्या उपनिवेशों में गया गिरमिटिया मजदूर गुमराह का नतीजा था? हालांकि यह सवाल अलग से शोध करने की माँग करता है। फिर भी इस संदर्भ में एक उदाहरण गैरजरूरी नहीं होगा। मॉरीशस के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रहलाद रामशरण ने अपने परदादा के मॉरीशस आने के बारे में जो किस्सा बताया है, वह एक दूसरी ही तस्वीर पेश करता है। वे लिखते हैं– "मेरे परदादा, आरा जिले के किसी गांव के थे। वे पत्नी सहित सन् 1868 में मॉरीशस पधारे थे। जब वे भारत में थे तब उनके परिवार में उनकी पत्नी, उनके भाई, और उसकी पत्नी रहते थे। वे एक दिन खेत से वे लौट रहे थे तब उनकी छोटी भावज अपने पति का भोजन लिए खेत जा रही थी किन्तु रास्ते में वह कुछ फाँकती जा रही थी, यह देख उनको बड़ा गुस्सा आया। क्योंकि स्त्री जाति को रास्ते चलते कुछ खाना असभ्य समझा जाता था। इनसे सहा नहीं गया और जैसे ही वह पास से गुजरी, उन्होंने कुदाल की मुट्ठी उसके हाथ पर दे मारी। हाथ टूट गया और भावज को अस्पताल ले जाना पड़ा। कुछ

[18] जी. ए. ग्रियर्सन और मेजर पीचर, *इन्क्वॉयरी इन्टू इमीग्रेशन प्रोसिडिंग्स*, सं. 9–15, रेवेन्यू एंड एग्रीकल्चरल डिपार्टमेंट, अगस्त–1883, पृ. सं. 1020–21 *और 1017*

[19] देखिये, प्रेमचंद की 1925 ई. में लिखित कहानी *'शुद्रा'*।

दिनों बाद हाथ तो अच्छा हो गया, पर जब–जब भावज का पति घर नहीं होता, तब–तब वह उन्हें तरह–तरह के ताने देती रहती। जब इनसे सहा न गया, तब पति–पत्नी ने मिरच जाने का निश्चय कर लिया और एक दिन किसी को कुछ कहे बिना वे कलकता चले आये और वहां से मॉरीशस पहुंच गये।''[20] अनुबंध–प्रथा के तहत हुए श्रम–प्रवसन की छवि लोकगीतों में बेहद कारूणिक रूप में है। हूज टिंकर के अनुसार वह (Indentureship) गुलामी की नयी प्रथा थी। लेकिन गिरमिटयाओं की तीसरी पीढ़ी आज भारत की वास्तविकता को देखकर यह टिप्पणी करती है कि अच्छा हुआ, जो इस देश की जातीय विषमताओं व सामाजिक संस्कारों को समुद्र की लंबी यात्राओं ने खत्म कर डाला।

औपनिवेशिक प्रवसन के अनेक मर्मस्पर्शी छवि के गीतों में *'रेलिया बैरी ना जहजिया बैरी / से पइसवा बैरी ना। संइया के लेके गइल भोजपुरी लोकगीतों में हिन्दी व्याकरण के तीन स, श, ष में से मात्र 'स' का प्रयोग होता है। अतः गीतों में प्रमूख 'स' की हूबहू रखा गया है क्येकि उसकी व्याख्या मे हिन्दी व्याकरण का पालन किया गया है / से पइसवा बैरी ना।'*[21] गीत आज भी बहुत लोकप्रिय हैं और *'लागल झुलनिया के धाका, बलम कलकाता निकल गये।*[22] गीत भी कम लोकप्रिय नहीं रहा है। इसमें पत्नी की झुलनी का धक्का लगने से प्रियतम कलकत्ता के लिए निकल चला। रेल से उतरा, जहाज पर चढ़ा, रंगून पहुँचा। रंगून, मलाया, श्रीलंका इत्यादि हिन्द–महासागरीय द्वीपों की ओर 19वीं सदी के उतरार्द्ध में कंगनी–प्रथा* के तहत भी इस क्षेत्र से लोगों का

---

[20] प्रहलाद रामशरण, *मॉरीशस : हिन्दमहासागर में एक नवोदित राष्ट्र,* (दिल्ली : राजपाल एंड संस, 1988), पृ. सं. 75

[21] तोताराम सनाढ्य, *भूतलेन की कथा,* सं. योगेन्द्र यादव व ब्रिज वी लाल, (दिल्ली : सरस्वती प्रेस, 1994), पृ. सं. 20

[22] राही मासूम रजा, *आधा गाँव,* उपन्यास, (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966) पृ. सं. 3, 7 अक्टूबर, 2005 को अज्ञात आडियो कैसेट से पेनआउट।

*www.nlb.gov.sg/biblioasia/vol.3/ no.3/Oct-2007, पृ. सं. 6 19वीं सदी के उतरार्द्ध में मलाया के विकास हेतु श्रमिकों को एक नये तरीके से भर्ती किया गया। जिसे 'कंगनी प्रथा' के नाम से जाना गया। इस प्रथा के तहत सन् 1938 तक अधिकतर मलयन कॉफी और रबर के बागानों के लिए श्रमिकों की खपत की गई। वास्तव में 'कंगनी' शब्द तमिल का है जिसका अर्थ होता है–निगरानी करनेवाला या श्रेष्ठ व्यक्ति। लेकिन यहाँ इसके ठीक विपरीत अनुबंध प्रथा में जो अधिकतर पुरुष प्रवासी मजदूर थे, उन्हें कंगनी–प्रथा ने मलाया में खड़ंजा बिछाने के काम में लगाया गया।

बेहतर अवसरों की खोज में जाना हुआ। यह गीत संभवतः उसी प्रथा की प्रवास–प्रक्रिया की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।

भोजपुरी क्षेत्र से बीसवीं सदी के दूसरे से लेकर पाँचवे दशक तक कलकत्ता की तरफ भारी संख्या में पलायन हुआ। आधिकारिक रिपोर्टों ने संगठित क्षेत्र के प्रवासी मजदूरों के संबंध में काफी विस्तार से ब्यौरा दिया है। मैं यहां उन रिपोर्टों के विस्तार में जाने से पहले एक लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहूंगा–

'के हो जइहें हाजीपुर, के हो जइहें पटना।
के हो जइहे कलकातवा नौकरिया ए बिरना।
ससुर जइहें हाजीपुर, भसूर जइहे पटना।
पिया जइहें कलकातावा नोकरिया ऐ बिरना।' [23]

इस गीत में दो बड़ी सच्चाईयां निहित हैं जिनका उल्लेख करना जरूरी हैं– एक तो यह कि मौखिक परंपरा में भी हर शहर की अपनी–अपनी अहमियत रही है और दूसरे, इस गीत में परिवार के सभी मर्द सदस्यों का प्रवसन हो गया है। बिरहिणी स्त्री के लिए परिवार के सदस्यों का महत्व अलग–अलग होता है। वैसे हर परदेस की अहमियत भी अलग–अलग होती है। यह लोक की एक विचित्र समझ रही है कि जो ज्यादा दूर वाले परदेस में होगा, वह ज्यादा कमायेगा। उपरोक्त गीत में हाजीपुर और पटना से कलकत्ता दूर है इसलिए उसकी ज्यादा अहमियत है। इस गीत में सभी मर्द सदस्य बाहर कमाने चले गये हैं जिसमें से उसका पति कलकत्ता कमाने गया है। यह बड़ी भयानक सच्चाई है कि भोजपुरी क्षेत्र से 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में खेतिहर किसानों एवं मजदूरों का बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। यह पलायन इतना हुआ कि काफ़िला का काफ़िला कलकत्ता, आसाम जैसे औद्योगिक व बागानी नगरों की ओर जाने लगा। कलकत्ता में जूट उद्योगों में प्रवासी श्रमिकों की उपस्थिति के संदर्भ में औपनिवेशिक आधिकारिक लेखनों में उनके आँकड़े उपलब्ध हैं। 1905 ई. में बी. फोले नामक एक अंग्रेज अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है– ''20 वर्ष पहले जूटमिलों में

[23] श्रीधर मिश्र, *भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन*, (इलाहाबादः हिन्दुस्तानी अकादमी, 1971), पृ. सं. 181

सारे मजदूर बंगाली थे। अब उनका स्थान संयुक्त प्रांत और बिहार के हिन्दुस्तानियों ने ले लिया।... जिसका परिणाम यह हुआ कि आज अधिकांश मिलों में दो तिहाई मजदूर देहाती हैं।''[24] बी. फोले के इस कथन को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से आँकड़ों में और बेहतर ढंग से समझा जा सकता है–

परिशिष्ट –1

1921–41 में जूट मिल मजदूरों के मूल–क्षेत्र (आँकडें प्रतिशत में)

वर्ष	बंगाल	बिहार	उड़ीसा	संयुक्त प्रांत	मद्रास	मध्य प्रांत	अन्य
1921	24.1	33.4	11.4	23.1	4.6	–	3.2
1928	24.8	37.1	15.7	11.2	9.1	1.9	
1929	1.7	60.0	5.0	14.0	4.0	–	
1941	11.6	43.1	3.4	36.4	1.6	–	0.8

स्रोतः रणजीत दास गुप्त–"*Factory Labour in Eastern India: Sources of Supply, 1855-1946: Some preliminary findings*", *The Indian Economic and Social History Review*, Vol.8, No.3, 1976, P. 276, Table - 6ए जिसमें 1928 का कॉलम शामिल नहीं है जो डब्ल्यू. बी. एस. ए., वाणिज्य विभाग (W.B.S.A., Commerce Branch) अप्रैल 1930, 7.12 से लिया गया है। 1921 से संबंधित आँकड़े समस्त श्रमिक बल पर लागू होते हैं और 1928 के आँकड़ों का संबंध 25 जूट मिलों से है। 1929 के आँकड़े अनुमानित हैं और 1941 के आँकड़े जगदल क्षेत्र में मिल–मजदूरों के नमूना सर्वेक्षण से लिए गए हैं। इसीलिए वे समस्त मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। यहाँ बिहार और संयुक्त प्रांत के मजदूरों की संख्या को जोड़कर देखने पर भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की संख्या का अंदाजा लगाया जा सकता है। 1921 में बिहार और संयुक्त प्रांत के मजदूरों की संख्या 33.4 और 23.2 को जमा करने पर 56.6 यानी पूरे मिल–मजदूरों के आधे से अधिक संख्या में हैं वहीं 1941 के प्रतिशत आँकड़ों पर गौर करते हैं तो पता चलता है कि 43. 1 जमा 36.4 बराबर 89.5 है। यह स्थिति केवल संगठित क्षेत्र में उपस्थित

[24] उद्धृत, दीपेश चक्रवर्ती, रीथिंकिंग वर्किंग क्लास हिस्ट्री–बंगाल–1890–1990 (दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989), पृ. सं. 102

भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की है। असंगठित क्षेत्र के संदर्भ में इस तरह का कोई आँकड़ा मौजूद नहीं है। यदि इस क्षेत्र के आंकडे भी मौजूद होते और उनके योगफल को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता कि उपर्युक्त गीत की पृष्ट भूमि कितनी वास्तविक है।

लेकिन समय के साथ हालात बदले और आजादी के बाद तीसरा दशक आते–आते कलकत्ता की जूट मिलें एक के बाद एक बंद होती गईं। प्लास्टिक का जलवा कायम हुआ तो जूट उत्पादों की महता घट गई। जूट मिलों में तालाबंदी उन दिनों अखबारों की सुर्खियां हुआ करती थीं। किन्तु बाद में यह सामान्य प्रक्रिया हो गई। आज ज्यादातर मिलों की हालत खस्ता है और मजदूर बेहाल हैं। बिहार, उतर–प्रदेश, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश व तमिलनाडू के लाखों प्रवासी श्रमिक इन मिलों में काम करते थे। सस्ता श्रम और जल परिवहन की उतम व्यवस्था ने कलकत्ता के जूट उद्योग को बुलंदी पर पहुंचाया था। कलकत्ता एवं इसके उपनगरीय क्षेत्रों में जूट मिलों का इतिहास लगभग दो सौ वर्षों का है। हुगली नदी के दोनों किनारों पर दो सौ से अधिक जूट मिलें स्थापित हुई और कहा जा रहा है कि अब उनमें से सिर्फ लगभग तिरेपन के आस–पास ही बची हैं। 1980 के दौरान एक के बाद एक मिलें रूग्णावस्था में जाने लगीं और भोजपुरी प्रदेश के मेहनती कलकत्तिया बालम अब पश्चिम की ओर रूख करने लगे यानी मुम्बई, सूरत, दिल्ली व पंजाब की ओर। *डेस्टीनेशन* बदल गया।[25] *'संइया गइलन सूरत', 'चली ना दिल्ली पंजाब, बिहार पिया छोड़ देवे के'*[26] ये गीत पिछली सदी के सातवें–आठवें दशक के दौरान दिल्ली–पंजाब, सूरट की तरफ हुए प्रवसन के फलस्वरूप निर्मित हुए हैं। इस गीत में पहली बार पत्नी भी परदेश जाने की बात कर रही है। वह कहती है कि बिहार में क्या रखा हुआ है कि यहाँ रहा जाए। करवंदिया पहाड़ (रोहतास जिला का प्रसिद्ध पहाड़) से गिटट्‌ी तोड़कर जो कुछ भी रोजी–रोटी चलती थी, वह भी बंद हो गई है।

[25] ठीक यही स्थिति औपनिवेशिक दौर में फ़िजी में गये गिरमिटिया मजदूरों की तीसरी पीढ़ी की है। हालांकि वहां इसकी वजह राजनीतिक उथल–पुथल है। विशेष अध्ययन के लिए गिरमिटिया इतिहासकार ब्रिज वी लाल की पुस्तकें यथा– *'चलो जहाजी'* या फिर 'Bittersweet' देखिये। उनकी यह चिंता जायज है कि 'किसी भी स्थान को अपना घर कहने के लिए वहां कितनी पीढ़ियों को रहना पड़ता है?', *फ़िजी यात्राः आधी रात से आगे, (दिल्लीः एन. बी. टी., 2005), पृ. 26*

[26] गीता रानी, *छौड़ा सब कुछ मांगेला,* कैसेट अलबम, (दिल्लीः टी–सीरिज, 2002)

अब तो यहाँ भुखमरी, अकाल, सूखा, डकैती, जेब–कटाई, अपहरण, बलात्कार जैसी चीजें आये दिन घटित होती रहती हैं। इस बारे में सरकार कुछ भी नहीं सोच रही है। इससे तो बाल–बच्चे भूखों मर जायेंगे। वह कहती है कि उसके गाँव (सिलवास, रोहतास जिले का एक बड़ा कस्बा) के कई लोग पंजाब में हैं।[27] चलकर उन्हीं के पास रहा जायेगा। यह गीत चूंकि लालू प्रसाद यादव के शासन काल में लिखा गया है इसलिए उस दौर के बिहार प्रदेश की आर्थिक स्थिति का जायजा लिया गया है या फिर इसे यूं भी कह सकते हैं कि यह गीत संस्कृति का राजनीतिकरण भी करता है। हालांकि यह एक अलग शोध का विषय है।

पिछली सदी के आठवें दशक के दौरान् जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद सरकार से *वीज़ा* में सहूलियत क्या मिली कि भोजपुरिया मुसलमानों में तो खाड़ी देश जाने की जैसे होड़–सी लग गई और करीब हर दूसरे–तीसरे घर का मुसलमान खाड़ी देशों की ओर रूख करने लगा। हिन्दू मजदूर भी पीछे नहीं रहा। *वीज़ा* की सहूलियत और रूपये की तुलना में दरहम, दीनार व रियाल की अधिक कीमतें लोगों को अपनी ओर खींचने लगीं और लोग अपनी माटी छोड़ विदेशी सरजमीं को गले लगाने लगे। खाड़ी देशों में हुए प्रवसन को लेकर आज भोजपुरी लोकगीत आने लगे हैं– *''बलमा रहेला हमार सउदी, रे भउजी'' या फिर ''संइया अरब गइले ना।''*[28] गौरतलब है कि खाड़ी या अन्य देशों में जाने वाले मजदूर कलकत्तिया या रजधनिया मजदूरों की अपेक्षा ज्यादा समय तक प्रवास में रहते हैं जैसे औपनिवेशिक दौर में गिरमिटिया मजदूर पाँच वर्ष से पहले अपने घर नहीं आ सकता था, ठीक वैसे ही ठेकेदारी के जरिये खाड़ी देशों में गये ये मजदूर दो एक वर्ष से पहले घर नहीं आ पाते हैं। इन मजदूरों से काम करवाकर मजदूरी न देने या इनका पासपोर्ट छिन लिये जाने की घटनाएँ आये दिन अख़बार की सुर्खियों में होती हैं। इनके साथ भी धोखाधड़ी करने की शुरूआत मजदूर

[27] पंजाब में बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रवासी मजदूरों के बारे में विस्तार से देखिये– अरविंद मोहन की पुस्तक, *प्रवासी मजदूरों की पीड़ा,* (दिल्ली : राधकृष्ण प्रकाशन, 1998)

[28] खेसारी लाल, *बलमा रहेला हमार सउदी रे भौजी,* वीडियो कैसेट एलबम (एंगल म्यूजिक : 2009)

मुहैया करवाने वाली एजेंसियों से होती है।[29] अरकाटियों की तरह इन्हें भी उन विदेशी कंपनियों से कमीशन मिलता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि *'पूरबी बनिजिया'*, *'मुगल पठानवा'*, *'पलटनिया'*, *'अरकाटी'*, *'पाँच साल'*, *'कलकाता पार'*, *'रेलिया'*, *'जहजिया'*, *'बिदेसवा'*, *'रंगूनवा'* *'दिल्ली–पंजाब'*, *'सउदी'*, *'अरब'* इत्यादि पदों से प्रवास काल, श्रम रूप, प्रवास–प्रक्रिया, प्रवास स्थान, आवागमन के साधन इत्यादि की सूचनायें मिल जाती हैं। ये सभी पद भोजपुरी क्षेत्र से हुए विविध प्रकार के प्रवास संबंधों को द्योतित कर रहे हैं। यहाँ 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' तर्क के आधर पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उस अलिखित इतिहास के समानांतर लोकसंस्कृति अपनी उपस्थिति दर्ज करती चली आ रही है। लेकिन प्रवसन से प्रवासी भोजपुरिया समुदाय के जातीय संरचना में आये परिवर्तन संबंधी विषय भोजपुरी की मौखिक परंपरा में अतीत एवं वर्तमान लगभग मौन दीखते हैं।

प्रवसन : मिथ का सृजन व पुनःसृजन

उपनिवेश के पहले से ही भोजपुरी प्रदेश के प्रवसन ने लोकसंस्कृति के दायरे में आने वाले रस्म़–रिवाज़, संस्कार, विश्वास, गीत–गाथा, नृत्य–नाट्य व कथा–कहानियों को ही प्रभावित नहीं किया बल्कि मिथकों को भी प्रभावित किया एवं कुछ नये सिरे से पैदा भी किया। मिथकों का सृजन–पुनःसृजन न केवल देस (नेटिव) में हुआ बल्कि परदेस में भी हुआ। यहाँ मैं दो लोकगीत और दो मिथकीय कथाओं का उल्लेख कर रहा हूँ। पहले चैतागीत देखिए–

''रामा शिव बाबा चलेले हा पुरूबी बनिजिया हो राम।
लादि लिहले, भंगिया धतुरवा हो रामा।।1।।
लादि लिहले, रामा होत भिनुसारवा सिवजी जगावे हो राम।
उठ गउरा, भंगिया रगरि के पिआव हो रामा।।2।।

---

[29] मनोज कृष्ण, *खुदखुशी की खाड़ी,* (दिल्ली : जनसता दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, 28 नवंबर, 2006) और इसे भी देखिये, अतुल अनेजा, *ग्रोइंग एर्ससन ऑफ एशियन वर्कर्स इन द गल्फ,* (दिल्ली : द हिन्दू, दैनिक अंग्रेजी समाचार–पत्र, 22 मई, 2007)

रामा कइसे में उठी सिव महादेव हो रामा।
मोरा गोदी, गनेस बाड़े बालक हो रामा।।3।।
रामा गनपति बालक पलंग सुताव हो रामा।
इचि एक, भंगिया रगरि के पियाव हो रामा।।4।।''[30]

प्रस्तुत चैता गीत में शिव बाबा (देवता) भी 'पुरूबी बनिजिया' जा रहे हैं। 'पूरबी बनिजिया' के लिए भंग–धतूरा लाद रहे हैं और भिनुसार (सुबह) में वे गौरा (पार्वती) को जगा रहे हैं कि गौरा भांग रगड़–घोलकर पिलायें। गौरा कहती हैं कि उनके गोद में बालक गणेश हैं। इस पर शिवजी कहते हैं कि बालक गणेश को पलंग पर सुला दो और थोडी–सी भांग पिला दो। प्रवसन भोजपुरी समाज की ऐसी सच्चाई है कि मिथकीय चरित्र भी प्रवसन के दबाव में सांस्कृतिक स्तर पर विचरण करते दीखते हैं। शिव एक देवता न होकर किसान जीवन में जीवन–यापन व जूझने वाले एक आम गृहस्थ हो गए हैं। जिन्हें घर–गृहस्थी तंदुरूस्त करने के लिए 'पूरबी बनिजिया' की ओर प्रवास करना पड़ रहा है। एक और गीत है जिसमें शिवजी बनिजिया से बारह वर्ष पश्चात घर लौटे हैं लेकिन एक और विवाह करके–

''महादेव चलले हा पुरबि बनिजिया, बितेला महिनवा चारि रे।
मचिया बइसि गौरा जोहेली बटिया, कब अइहें तपसि हमार रे।।1।।
बारह बरिस पर लौटे महादेवा, भइले दुहरवा पर ठाढ़ रे।
सूतल बाड़ू कि जागल गउरा देई, खोलहूं बजर केवाड़ रे।।2।।
पनिया पियहूँ तुँह बइठ महादेव, कह न नइहर कुसलात रे।
कूल्ह कुसल बाड़े हे गउरा देई, कूसल नइहर तोहार रे।।3।।
एक कूसल मोरे नाहीं गउरा देई, कइली हाँ दोसार बियाह रे।
कइलों बियाह शिव बड़ा निक कइली, जे अंग सुभाव बताव रे।।4।।
कइसन हाथवा, कइसन गोड़वा, कइसन सहज सुभाव रे।
तोहर निअर बाड़े गोड़वन हथवन, ओइसन अंग सुभाव रे।।5।।
ओठवा त बाड़े कतरल पानवा, केसियन भँवर लोभाई रे।
किया गउरा आन्हर किया गउरा लंगर, किया गउरा कोखिया के हून रे।।6।।

[30] कृष्णदेव उपाध्याय, *हिन्दी प्रदेश के लोक (ग्राम) गीत,* (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा. लि., 1990), पृ. स. 98

किया गउरा देइ सेवा के चुकली, काहे कइली दूसर बियाह रे।
नाहिं गउरा आन्हर नाहिं गउरा लंगर, नाहिं गउरा कोखिया के हून रे।।7।।
विधि के लिखल गउरा आरे नाहिं मेटे रे, भावी कइल दूसर बियाह रे।''[31]

यह शिव–गौरा गीत है। स्त्रियाँ इसे विवाहोत्सव के अवसर पर मंगलगान के रूप में गाती हैं। यह संस्कार गीत सूचित करता है कि पति का पत्नी की यौन शुचिता के प्रति संदेह एवं उसके निराकरण के लिए परीक्षा लेने की एक लंबी पंरपरा रही है। यह परंपरा स्त्रियों की इस मानसिकता को मजबूत करती है कि शिव जैसे भगवान ने अपनी गौरा पर संदेह किया तो हमारी क्या विसात? इसलिए हमें पति के संदेह को अपने निर्मल स्वभाव एवं व्यवहार से दूर करना चाहिए। सीता की अग्नि–परीक्षा की भांति स्त्री की यौन सुचिता की परीक्षा उसके लिए वैध स्वीकृति बन गई है।

अब देखते हैं कथाओं में मिथ के सृजन और पुनःसृजन को। पहली कथा भोजपुरी क्षेत्र की है, जो इस प्रकार है–

''एक बुढ़िया थी। उस बुढ़िया का जवान बेटा था। जिसका नाम था रमानाथ। वह जीविका के लिए परदेश चला गया। पुत्र के विदेश गमन के पश्चात् उसकी बुढ़ी माँ बहुत ही चिंतित एवं दुःखी रहा करती थी कि उसकी पुत्र–बधू उसे प्रायः नित्य खरी–खोटी बातें सुनाया करती थी। इसलिए बुढ़िया प्रतिदिन अत्यंत चिंतित और उदास भाव से घर के बाहर स्थित एक कुँए की जगत् पर बैठकर आँसू बहाया करती थी।

बुढ़िया का यह क्रम बराबर चलता रहा। एक दिन उस कुंए में–से दिये की माँ नामक एक स्त्री निकली और उसने बुढ़िया से पूछा–''ओ बुढ़ी माँ, तुम इस तरह से बैठकर नित्यप्रति क्यों रोती हो? तुम्हें किस

[31] जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, *सम बिहारी फोल्कसांग्ज*, जे आर ए एस, न्यू सीरिज, वॉल्यूम 16, सं. 2, (अप्रैल, 1884), पृ. सं. 196–246

बात का कष्ट है। तुम अपना दुःख मुझसे बताओ। मैं तुम्हारे दुःख को दूर करने का भरसक प्रयत्न करूँगी।'' बुढ़िया ने उस स्त्री के ऐसे प्रश्न सुनकर भी उसका कोई जबाव नहीं दिया और उसी तरह बैठकर रोती रही। दिये की माँ द्वारा बार–बार एक ही प्रश्न दोहराये जाने से वह बुढ़िया झुंझला उठी। उस बुढ़िया ने दिये की मां से कहा–''तुम मुझसे बारबार ऐसा क्यों पूछ रही हो? क्या सचमुच ही तुम मेरा दुःख जान लेने के पश्चात् उसे दूर कर सकोगी?'' बुढ़िया की बात सुनकर दिये की माँ ने उसे उत्तर दिया –''मैं अवश्य ही तुम्हारे कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करूंगी।'' बुढ़िया ने दिये की माँ का ऐसा आश्वासन पाकर कहा–''मेरा बेटा कमाने के विचार से परदेश चला गया है। उसकी अनुपस्थिति के कारण मेरी बहू मुझे हमेशा बुरा–भला कहकर कोसती रहती है। मेरे दुःख का यही एकमात्र कारण है।'' बुढ़िया की बात सुनकर दिये की माँ ने उससे कहा–''यहाँ के वन में संकटा माता रहती हैं। तुम अपना दुःख उन्हें सुनाकर कष्ट से छुटकारा पाने के लिए विनती करो। वे बहुत ही दयालु हैं। उन्हें दुःखियों से बहुत अधिक सहानुभूति है। वे निःसंतानों को सन्तानवान, निर्धनों को धनवान, निर्बलों को बलवान्, और अभागों को भाग्यवान बनाती हैं। उनकी कृपा से सौभाग्यवती स्त्रियों का सौभाग्य अचल हो जाता है। कुमारी कन्याओं को उन्हें अपने इच्छित वर की प्राप्ति होती है। रोगी अपने रोगों से मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी जो मनोवांछना हो, उन सभी को पूरा करती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।'' दिये की माँ की ऐसी विलक्षण बात सुनकर बुढ़िया संकटाजी के पास गया और उनके चरणों पर गिरकर साष्टांग दण्डवत् करके विलाप करने लगी।

संकटाजी ने दयार्द्र होकर बुढ़िया से पूछा–''बुढ़िया, तुम किस दुःख के कारण बराबर रोती रहती हो?''

बुढ़िया ने कहा–''हे माता, आप तो सब कुछ जानने वाली हैं। आपसे कुछ भी छिपा नहीं हैं। आप मेरे दुःख को दूर कर दें, तो मैं अपनी करूणगाथा आपको सुनाउं।''

उसकी बात सुनकर संकटाजी ने कहा–'' तुम पहले मुझे अपना दुःख तो बताओ। दुःखियों का दुःख दूर करना ही मेरा काम है।''

संकटाजी के ऐसा कहने पर बुढ़िया ने कहा–"मेरा लड़का परदेश चला गया है। उसके घर में न रहने से मेरी बहू मुझे तरह–तरह की बातें सुनाया करती है। उसकी बातें सहन करने के योग्य नहीं होती। इसी कष्ट के कारण मैं विवश होकर बराबर रोया करती हूँ।"

बुढ़िया की इस दर्द–भरी गाथा को सुनकर माता संकटा ने कहा–"तुम घर जाकर मेरे लिए मनौती मान दो कि, हे संकटा माता, यदि मेरा लड़का सकुशल घर वापस आ जायेगा तो मैं आपकी पूजा करूँगी। और सुहागिन स्त्रियों को आमंत्रित करके उन्हें भोजन कराऊँगी।"

संकटा माता के कथनानुसार उस बुढ़िया ने घर आकर लड्डू बनाये। परंतु विचित्र बात यह थी कि जब भी बुढ़िया सात लड्डू बनाती तो सात की जगह आठ लड्डू बन जाते। इस बात से बुढ़िया बहुत ही असमंजस में पड़ गयी कि ऐसा होने का क्या कारण है? कहीं मेरी गिनती करने में तो भूल नहीं हो रही है अथवा अपने–आप आठ लड्डू बन जाने का कोई अन्य कारण है। उसी समय वृद्ध स्त्री के वेश में माता संकटा प्रकट हुई और बुढ़िया से कहा–"क्यों बुढ़िया, आज तुम्हारे यहाँ कोई उत्सव है क्या?"

सुनकर बुढ़िया ने कहा–"हाँ, आज मैंने संकटाजी के लिए सुहागिनें खिलाने का आमंत्रण दिया है। किन्तु जब गिनकर सात लड्डू बनाती हूँ, तो वे लड्डू अपने–आप ही आठ बन जाते हैं। मैं इसी बात से बहुत चिंता में पड़ गयी हूँ।" बुढ़िया कहने लगी–"नहीं, मैंने तो ऐसा नहीं किया हैं। परंतु तुम हो कौन?"

संकटाजी ने कहा–"मैं बुढ़िया हूँ। मुझे थी तुम आमंत्रित कर दो।"

ऐसा सुनकर बुढ़िया ने उस संकटरूप धरी बुढ़िया को भोजन के लिए निमंत्रित कर दिया।

इसके बाद बुढ़िया के घर पर सभी आमंत्रित सुहागिनें आ पहुंची और बुढ़िया ने सबको लड्डू तथा अन्य मिठाई आदि का भोजन कराया। इससे माता संकटाजी की कृपा से उस रमानाथ के मन में अपनी माता

एवं पत्नी से मिलने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई। सुहागिनों के भोजन करते ही उस बुढ़िया का लड़का परदेश से अपने घर आ गया। लड़के के आने की सूचना बुढ़िया को दी गई। लेकिन बुढ़िया अपने काम में लगी रही। उसने कहा—''लड़के को बैठने को कहो। मैं सुहागिनें जिमाकर अभी आती हूं।''

लड़के की बहू ने पति—आगमन का समाचार पाकर पति के स्वागतार्थ वहाँ से तुरंत प्रस्थान कर दिया। लड़के ने अपनी बहू को देखकर मन में विचार किया कि मेरी पत्नी को मेरे प्रति कितना प्रेम है, जो खबर पाते ही मुझसे मिलने के लिए चली आयी, परंतु मेरी माता को मुझ पर जरा भी स्नेह नहीं है, क्योंकि खबर पाकर भी माता ने आने की बात न सोची।

जब पूजा का काम समाप्त हो गया और सब सुहागिनें भोजन करके अपने—अपने घरों को लौट गयीं, तो बुढ़िया अपने बेटे से मिलने के लिए उसके पास आ पहुंची।

माँ के आने पर लड़के ने पूछा—''माँ, तुम अब तक कहां रही?''

माँ ने उतर दिया—''बेटा, तुम्हारी कुशलता के लिए ही मैंने संकटा माता से मनौती मानी थी और उसी को पूरा करने के लिए सुहागिनें जिमा रही थी।''

संकटा माता की कृपा से लड़के का मन अपनी स्त्री से हट गया। उसने माँ से कहा—''माँ, या तो मैं ही रहूँगा या यही रहेगी।''

बुढ़िया ने कहा—''बेटा, तुम्हें तो मैंने कड़ी कठिन तपस्या से पाया है। इसलिए तुम्हें मैं कैसे छोड़ सकती हूं। तुम्हारे लिए चाहे बहू का भी त्याग करना पड़े तो मैं कर सकती हूँ।''

अतः लड़के ने अपनी स्त्री को घर से निकाल दिया। बहू घर से निकलकर बाहर आयी और बहुत ही दुःखी मन से एक पीपल के पेड़ पर चढ़कर बैठ गयी और वहीं रोने लगी। उसी समय एक राजा

उधर से जा रहा था। उसके रोते देखकर राजा ने पूछा–"तुम क्यों रो रही हो?"

उसने अपनी सारी बात राजा से बतायी। राजा ने कहा–"आज से तुम मेरी धर्म–बहन हो इसलिए तुम रोओ मत, और पेड़ से नीचे उतर आओ। मैं तुम्हारे सभी कष्टों को दूर करने का यथासंभव प्रयत्न करूँगा।"

राजा के मुख से ऐसी बात सुनकर वह स्त्री पेड़ से नीचे उतर आयी और राजा के साथ–साथ उसके महल को चली गयी। घर जाकर राजा ने अपनी रानी से सारा वृतांत कह सुनाया और रानी को संबोधित करते हुए कहा–"देखो, यह आज से मेरी धर्म–बहन है। इसको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए।"

राजा के यहां पहुंचकर फिर उस रमानाथ की स्त्री ने संकटा के निमित्त सुहागिनों को बुलाकर भोजन कराया। लड्डू बांधकर रानी को भी न्योता दिया। जब सुहागिनें लड्डू खाने लगी तो रानी ने कहा–"मुझे तो रबड़ी, मलाई तथा सुस्वादू मिष्ठान्न भी हजम नहीं होते, तो फिर ये पत्थर सरीखे कठोर लड्डू कहाँ से हजम होंगे।" ऐसी अवहेलनापूर्वक बातें कहकर रानी ने लड्डू खाने से इन्कार कर दिया।

संकटा माता की कृपा से सुहागिनों के खाते–ही–खाते उस स्त्री का पति अपने घर से उसको लेने के लिए आ गया। यहाँ आकर अपनी पत्नी को माता संकटाजी की पूजा करते हुए उसने देखा। संकटा माता को हाथ जोड़कर उसने अपनी पत्नी से कहा–"प्रिये, मेरे अपराध को क्षमा करो।" पत्नी ने कहा –"पतिदेव, यह सब प्रारब्ध से ही होता है। इसमें किसी का कोई दोष नहीं है। आप मेरे ईश्वररूप हैं। मेरे ही अपराधों को आप क्षमा करें।" यों कहकर उन दोनों ने मिलकर माता की सविधि पूजा की। पूजा की समाप्ति होने पर वे दोनों स्त्री–पुरूष प्रसाद खा–पीकर अपने घर जाने के लिए तत्पर हुए। जाते समय बहू ने उस रानी से कहा–"मुझको जब दुःख पड़ा तो मैं अपने धर्म–भाई के साथ तुम्हारे घर चली आयी और यदि तुमको भी किसी तरह का कष्ट पड़े तो तुम मेरे यहाँ निःसंकोच भाव से चली आना।" ऐसा कहकर बहू अपने पति के साथ राजा के घर से विदा हो गयी।

संकटा माता का निरादर करने के कारण रानी पर संकटा माता का कोप हो गया और बहू के जाने के बाद ही उसका सारा राज्य तहस–नहस हो गया।

ऐसी विपति में पड़कर रानी ने राजा से कहा–''न मालूम वह तुम्हारी धर्म–बहन कैसी थी कि, उसके यहाँ से जाते ही यहाँ का सब कुछ नष्ट–भ्रष्ट हो गया।''

राजा ने रानी से कहा–''वह जाते समय कह गयी है कि मेरे उपर कष्ट पड़ने से मैं तुम्हारे यहाँ आयी और कदाचित् तुम्हारे ऊपर भी कोई कष्ट आ पड़े, तो मेरे घर चली आना। इसमें जरा भी संकोच न करना।'' इसलिए अब हम लोगों को उसके यहां ही चलना चाहिए।

ऐसा निश्चय करके राजा–रानी दोनों ही अपनी धर्म–बहन के घर गये।

वहाँ जाकर रानी ने कहा–''बहन, तुमने हमारे यहां ऐसा क्या कर दिया कि, तुम्हारे आते ही हमारी सारी संपति नष्ट हो गयी और हम लोग बहुत ही परेशानी में पड़े हुए हैं।''

रानी की ऐसी बात सुनकर उसने कहा–''बहन, मैं तो कुछ नहीं जानती। मेरी कर्ता–धर्ता तो सब कुछ संकटा माता ही हैं। उनके अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है। इसलिए मेरी राय से तुम भी संकटा माता से अपनी भूलों के लिए क्षमा–याचना करो। उन्हीं की मान–मनौती से तुम्हारा सारा काम बन जायेगा और तुम्हारा बिगड़ा हुआ दिन सुधर जायेगा।''

उसके कथनानुसार रानी ने श्रद्धा–भक्ति से संकटाजी का व्रत किया और सुहागिनों को जिमाया तथा अनजान में हुए अपनी भूल के लिए संकटा माता से बारम्बार क्षमा माँगी।

रानी के ऐसा करते ही संकटा माता प्रसन्न हो गयीं। रात में रानी को स्वप्न दिया कि तुम दोनों कल सुबह अपने घर को चले जाओ।

वहां जाकर मेरी पूजा और व्रत करो तथा मेरे निमित सुहागिनों को जिमाओ। ऐसा करने से तुम्हारा गया हुआ राज–पाट तुम्हें वापस मिल जायेगा।

सुबह होते ही राजा–रानी अपने घर को चले आये। घर आकर स्वप्न के अनुसार सब काम किये। ऐसा करने से उनका बिगड़ा हुआ दिन सुधर गया और सारा राज–पाट मिल गया। वे लोग पहले की तरह राज्य का सुख भोगने लगे। ''

औपनिवेशिक प्रवसन जब अपने चरम पर था, बनारस क्षेत्र में संकटा माता नामक एक देवी प्रकट हुईं। इनके सम्मान में एक भव्य मंदिर भी बना है। जहाँ स्त्रियाँ अपने परदेशी पति या बेटों की लंबी आयु एवं स्वास्थ्य के लिए पूजा करने आती हैं। मंदिर में सप्ताह के प्रत्येक शुक्रवार को पूजा होती है। मंदिर में 'संपूर्ण मानोकामनाओं को देनेवाली एवं शीघ्र संकट निवारणी संकटा माता व्रतकथा' का पाठ सुनती हैं और नारियल, लाल चुनरी, मिठाई, फूल और पैसे चढ़ाती हैं।

दूसरी कथा मॉरीशस की है, जो इस प्रकार है।

''सीता हरण के लिए रावण ने मारीच को सोने का हिरण बनाकर राम की कुटिया के सामने भेजा। उसे देख सीता का मन ललचा गया और वह सोने के हिरण को पकड़ने के लिए राम से हठ करने लगी। राम ने उनकी बात मान ली और वह मारीच के पीछे–पीछे कुटी से बहुत दूर निकल गये। अंत में उन्होंने हिरण पर बाण छोड़ दिया। राम का बाण लगते ही मारीच अपने असली रूप में आ गया और धरती पर गिरकर छटपटाने लगा। इस तरह प्राण छोड़ते–छोड़ते मारीच ने राम से आग्रह किया, 'आपके हाथों यह शरीर छोड़ने का सौभाग्य मुझे मिला है। अब मेरी एक और ईच्छा बाकी रह गयी है। आप मुझे ऐसा वरदान दें कि मैं हमेशा आपका नाम सुनता रहूँ।' भगवान ने उसे वरदान दे दिया। मारीच ने खुशी–खुशी प्राण छोड़ दिया। जब मारीच का शव भगवान राम के हाथ लगा तो वह मोतियों के दानों में बदल गया। भगवान ने कुछ सोचते हुए उन्हें दक्षिण दिशा की ओर फेंक दिया। भगवान द्वारा फेंके गये मोतियों के दाने हिन्द महासागर में जाकर

गिरे और छोटे बड़े द्वीपों में बदल गये। उनमें मॉरीशस, रीनियन, रोद्रिक और मेडागास्कर प्रमुख थे।''[32]

संस्कृति और इतिहास के तनाव में फंसे गिरमिटिया मजदूरों की यह मिथकीय लोक–कथा उनके ऐतिहासिक संदर्भों को पुष्ट करती है। यह लोककथा उन्हें मॉरीशस की जमीन को अपनाने के लिए वैधानिकता की खोज करती है। यह वैधानिकता उन्हें एक तरफ शाश्वत मानसिक बल प्रदान करती है तो दूसरी तरफ एक स्थान से उखड़कर दूसरे स्थान पर बसने के दौरान होने वाले अलगाव व अजनबीपन जैसे प्रवासी भावबोध को दूर करती है। कथा में जिन जातियों की चर्चा की गई हैं, वह दरअसल पुर्तगालियों, फ्रांसिसियों और अंग्रेजों की ओर संकेत कर रही है। इस देश के उद्भव को मजदूर वर्ग ने अपने मिथकीय कथाओं के भीतर से अर्जित किया और अपने 'लाल पसीना'[33] से उसको आबाद किया। इससे समझा जा सकता है कि निम्नवर्गीय जनता का अपने मिथकों व किंवदंतियों से आत्मीय लगाव कैसा और कितना होता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि औपनिवेशिक घटनाओं के दबाव से मिथकों का न केवल पुर्नसृजन हुआ है बल्कि मिथक नये सिरे से सृजित भी हुए हैं जो आज इतिहास लेखन का कारण बन रहे हैं। बेशक मॉरीशस में भारतीय मजदूरों का प्रवसन नहीं होता तो मारीच की यह कथा नहीं बन सकती थी।

संचार माध्यम और आवागमन के साधन

लोकपरंपरा में प्रवसन के शुरूआती दौर में नेटिव और डेस्टीनेटिव के बीच संवाद कायम करने के लिए पवन, बादल जैसे गतिशील प्राकृतिक स्रोत संचार माध्यम के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मध्यकालीन मौखिक परंपरा में काग, भौंरा, कबूतर, बाज़, हिरणी, सुग्गा, घोड़ा जैसे पशु–पक्षी संदेश वाहक के रूप में मिलते हैं। लेकिन जब लेखन संस्कृति लोक के पास पहुँचती है तब लोक परंपरा में जाति विशेष जैसे कायस्थ जाति चिट्ठी लिखने व वाचन का काम करती हुई दिखाई पड़ती हैं। कालांतर

[32] रामशरण पहलाद, *मॉरीशस की शकुंतला,* (दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, 1989)

[33] अभिमन्यु अनत, *लाल पसीना,* उपन्यास, (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1977)।

में धीरे धीरे साक्षरता जाति, पास पड़ोस एवं घर के पुरूष सदस्य में आती है। साक्षरता की बयार उस स्त्री तक भी पहुँचती है, जो घर की चहारदीवारी में कैद रहती थी। जो अपने पति को हाले–दिल सुनाती थी। फिर आती है सूचना प्रौद्योगिकी। सूचना प्रौद्योगिकी पुनः उसे मौखिक परंपरा की ओर ले जाती है परंतु साक्षरता के साथ फिर भी उसे अलगाव का बोध बना हुआ है। इसी तरह लोकसंस्कृति में संचार माध्यमों के क्रमिक विकास के साथ आवागमन के साधनों में भी हुए परिवर्तन को देखा जा सकता है।

प्रवसन की वज़ह से पारिवारिक/दाम्पत्य संबंधों में अलगाव लाज़िमी है। अलगाव अकेलापन पैदा करता है। अकेलापन स्मृति और वर्त्तमान इतिहास के बीच द्वंद्व पैदा करता है। ऐसे में अपना प्रिय बहुत याद आता है। इतना कि वह मानवेतर जीवों से एकालाप करने लगता है। वह उसके पास अपना संदेश देने लगता है। यह स्थिति उन स्त्रियों के साथ होती है, जिनके पति विवाह करते ही काम की तलाश में पत्नी को घर छोड़कर परदेश चले जाते हैं। भोजपुरी के निम्नलिखित जँतसार गीत को देखें–

'ननदि के अंगना चनन घन गछिया हो रामा।
ताहि चढ़ि बोलेला कागवा छुलच्छन हो रामा
देबऊ रे कागवा, दूध–भात दोनिया हो रामा।
खबर ना ला दे बलम परदेसिया हो रामा।' [34]

पति परदेश में है। ननद के आंगन ससुराल में चंदन की घनी गाछ है। उस पर सुलक्षण कौवा बोल रहा है। वह कौवे से परदेशी बालम की खोज खबर लाने की निहोरा कर रही है। पत्नी ससुराल के आंगन को अपना नहीं समझ रही है। उसमें परायापन का बोध बना हुआ है। पर्दा–प्रथा की वजह से वह पति की अनुपस्थिति में प्रवासी जीवन जी रही है। इस गीत में 'कागा' को संदेश वाहक बनाया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'काग' पालतू पक्षी नहीं है। वह आंगन

[34] शाहिद अमीन, संपा. *ए कॉनसाइज इनसाईक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाईफ,* (दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स, 2005), पृ. सं. 267

के चंदन, नींबू या फिर छप्पर पर आकर स्वयं बैठता है। लेकिन तोता एक पालतू पक्षी होता है। आमतौर पर वह भोजपुरी प्रदेश के उच्च वर्गीय समाज में पाला जाता है। मतलब काग से संदेश पहुँचाने वाली स्त्री की अपेक्षा तोते से संदेश पहुँचाने वाली स्त्री का सामाजिक एवं आर्थिक स्टेट्स उँचा है। काग से संदेश भेजने वाली स्त्री की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह मनोरंजन के लिए भी तोता पाले। पर्दा–प्रथा दोनों ही समाजों में है। जिसकी वजह से स्त्री घर से बाहर नहीं निकल सकती है। संचार का कोई साधन नहीं है। अकेले में अपने प्रवासी पति की खबर लाने का निवेदन कर रही है। इसी तरह निम्नलिखित जँतसार गीत पर गौर करें–

'बारह बरिस के उमरिया त, हरि मोर बिदेसे गइले।
केकरा के बदबो कयथवा, चिट्ठी लिखी भेजब।
छोटका देवरवा बदबो कयथवा, चिट्ठी लिखी भेजब।'[35]

बारह वर्ष की उम्र में उसका पति विदेश चला गया। अब वह किसको कायस्थ बनाये ताकि उसकी चिट्ठी लिख भेजे। प्रवासी की पत्नी अपने देवर से चिट्ठी लिखवाकर अपने प्रिय को संदेश भेज रही है। गीत की पंक्तियाँ यदि सामाजिक संरचना की सूचना दे रही हैं तो दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन अर्थात् साक्षरता की ओर भी संकेत कर रही हैं। भारतीय भोजपुरी समाज में पढ़ने–लिखने का पेशा जाति विशेष, कायस्थों का था। हालांकि ब्राह्मण जाति भी पढ़ने लिखने के पेशे में थी। लेकिन लोकसाहित्य में उसकी उपस्थिति मात्र 'पतरा' वाचन या कथा वाचन तक ही सीमित है। भारतीय समाज में जाति विशेष की साक्षरता की यह स्थिति पूर्व औपनिवेशिकता की ओर संकेत कर रही है। यह गीत हमें यह तो सूचित नहीं करता कि इसमें किस जाति का उल्लेख हुआ है। परंतु वह कायस्थ नहीं है। छोटा देवर पढ़ लिख गया है। मतलब, लिखने पढ़ने का काम कायस्थों का था। साक्षरता अब परिवार में आ रही है।

[35] हूज फ्रेजर, *द फोकलोर फ्रॉम इस्टर्न गोरखपुर (न्यू),* (कलकता, जॉरनल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग–1, सं. 1, 1883), पृ. सं. 5, इसे भी देखिये, कृष्णदेव उपाध्याय, *हिन्दी प्रदेश के लोक (ग्राम) गीत,* (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा. लि., 1990)।

प्रवसन से निर्मित्त लोकसंस्कृति में संचार माध्यम के रूप में 'बटोहिया' नाम का एक महत्वपूर्ण प्रत्यय है। बटोहिया शब्द 'बटोही' का भोजपुरीकरण है। बटोही पथिक, राही, राहगीर को भी कहते हैं। दरअसल बटोहिया की अवधारणा भोजपुरी लोकसंस्कृति में प्रवासी पुरूषों एवं उनकी पत्नियों के संदेश को एक दूसरे के पास पहुँचाने वाले संदेश वाहक के रूप है। वह एक ऐसा संदेश वाहक है जो न केवल प्रवासी पुरूष और उसकी पत्नी के सुख–दुख की खबर उनके पास पहुँचाता है बल्कि शहर और गाँव के बीच बटी उनकी जिदंगी को एक करने की कोशिश भी करता है। लोक साहित्य में इस प्रत्यय का प्रयोग पहली बार कब हुआ, बताना कठिन है। परंतु बहुत पहले भोजपुरी लोकगीतों में, स्वांग करने वालों में *'गुदरराय'* का नाम लिया जाता है, जिनके गीतों में बटोही की संकल्पना की बात सुनी गई है। सहनी पट्टी, बक्सर निवासी श्री रामसकल पाठक द्विजराम की *'सुंदरी विलाप'* ऐसी ही गीत रचना सन् 1906 ई. में प्रकाशित हुई बतायी जाती है और इससे भी पहले सन् 1857 के ग़दर से प्रभावित होकर दिल्ली से भोजपुरी क्षेत्र हथुआ महाराज के राज मीरगंज की तरफ भागकर नाचने–गाने वाली एक विस्थापित परिवार में 'सुंदरीबाई' ऐसे ही गीत और कौतुक के लिए लोकप्रिय हो चुकी थी। सुंदरी अपने लोकनृत्य–नाट्य में एक तमासा प्रस्तुत करती थी, जिसमें सुंदरी बाई का पति परदेश में धनोपार्जन के लिए चला जाता है। सुंदरी कहती है –

''आम बगइचा घने बाग, ताही बीच डगर लगी हो।
आमवा के डाढ़ि धरले, नयनवा से नीर ढरे हो''[36]

जब्बार (बटोही) कहता है –

''बात त पूछेला बटोहिया, काहे धनि ढाढ़ि भई हो।
केकर जोहेलू बाट, नयनवा से नीर ढरे हो।'[37]

---

[36] केदार चौधरी, *भिखारी ठाकुर के नाटकों में लोकजीवन*, (दिल्ली : जे. एन. यू., एम. फिल. शोधकार्य, अप्रकाशित, 1993), पृ.सं. 63

[37] वही, 63

इस वार्त्ता में सुंदरी बाई अपने प्रियतम के रूप–वर्णन नख–शिख वर्णन जैसा प्रस्तुत करती है और अंत में कहती है –

''लिख के ना भेजा एको पाति, सुधि बिसरइले हो।'[38]

इसके प्रत्युत्तर में जब्बार (बटोही) कहता है।

''सूप भर लेई धन सोनवाँ, मोतियन माँग भर हो।
तजि द बिअहुआ के आस, तु हमरा संग चलु रे।''[39]

इस पर सुंदरी कहती है –

''आग लगइबो तोहरे सोनवा, मोतियन बजर पड़ो रे।
कबहूँ लवटिहें निरमोहिया, इंहै टेक पड़ो रे।''[40]

सुंदरी बाई द्वारा प्रस्तुत यह स्वांग उन दिनों लोगों की जुबान पर था। 20वीं सदी के दूसरे दशक में भोजपुरी भाषा में राष्ट्रीय गीत लिखने वाले रघुवीर नारायण सिंह 'बटोहिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका 'सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा से, मोर प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया' गीत हिन्दुस्तान में घूमने वाले उन सभी बटोहियों को संबोधित था जो व्यापारी थे, सैनिक थे, कूली थे इत्यादि। ठीक इसके कुछ ही दिनों बाद भिखारी ठाकुर (सन् 1887–1970) अपने बिदेसिया नाटक में बटोहिया नाम की अवधरणा लेकर आते हैं। इस नाटक में प्यारी सुंदरी को कलकत्ता कमाने जा रहा एक बटोही मिलता है। ध्यान हो कि यह बटोही भी एक कलकत्तिया मजदूर है। प्यारी सुंदरी इस बटोही से अपनी सारी कथा–व्यथा सुनाती है और अपने पति की पहचान भी बताती है–

''करिया ना गोर बाटे, लामा नाहीं हउवन नाटे,
मझिला जवान साम सुंदर बटोहिया।

[38] वही, 63
[39] वही, 63
[40] वही, 63

घुठी प ले धोती कोर, नकिया सुगा के ठोर,
सिर पर टोपी, छाती चाकर बटोहिया।
पिया के सकल के तूँ मन में नकल लिख,
हुलिया के पुलिया बनाईल बटोहिया।'[41]

यानी वह न तो काला है न गोरा, न लंबा है न छोटा बल्कि वह मंझले कद की चौड़ी छाती वाला साँवला व सुंदर जवान है। जिसके घुटने तक धोती है, नाक तोते की चोंच–सी है, सिर पर टोपी पहने हुए है। बटोही प्यारी सुंदरी को सांत्वना देकर कलकत्ता चल देता है। खोजते–खोजते वह वहाँ पहुँचता है जहाँ बिदेशी अपनी रखैल सलोनी के साथ चौपड़ खेल रहा है। *''बइठि के सलोनी पास, खेलत रहलन तास।''* पहले तो बटोही उस निर्मोही कलकतिया बिदेशी की भर्त्सना करता है और फिर याद दिलाता है कि सुंदर साँवरे वर्ण वाली उसकी प्यारी धनिया किस हाल में है –

''तोहरा मेहरिया के कटि हो केहरिया के,
देखकर होइहें वान हो बिदेसिया।
माथवा के बरवा भँवरवाँ समान बाटे,
मुँहवा दीपकवा बरत बा बिदेसिया।'[42]

बात बिदेसी को लग जाती है। रखैल को देखकर बटोही बिदेसी को वेश्या के खतरों से सावधान करता है–

'छोड़ि द अधरम, मिजाज कके नरम तू,
मनवा में कर लेहु सरम बिदेसिया।
धरम के नाव पर, चढ़ि के मउज कर,
हर बिरहिनिया के दुख हो बिदेसिया।''[43]

---

[41] नागेन्द्र प्रसाद सिंह एवं वीरेन्द्र नारायण सिंह यादव, संपा., *भिखारी ठाकुर रचनावली*, (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2005), पृ. सं. 38।

[42] वही, 42.

[43] वही, 46.

इस तरह बटोहिया न केवल प्रवासी पति और उसकी पत्नी का संवदिया है बल्कि वह उनके सुख–दुख में शामिल हो गया है और उनके इर्द–गिर्द या उनमें हो रहे गलत को ठीक भी कर रहा है। बटोही सदा नेटिव संस्कृति की तरफदारी करता है।

यह कहना गैर–जरूरी नहीं होगा कि परदेश में नौकरी करते हुए महिला सहकर्मी के साथ संबंध बन सकता है। दोनों दाम्पत्य की तरह रह सकते है। यह स्वाभाविक है। शहर की वह स्त्री साक्षर हो सकती है। घर लौटे अपने पुरूष सहकर्मी की आयी चिट्ठी का जबाव भी भेज सकती है। जैसा कि भिखारी ठाकुर के बिदेसिया नाटक में बिदेसी कलकत्ता में सलोनी के साथ रहता है। ऐसी ही स्थिति में पति की चिट्ठी का इसने (सौतन) ने जवाब भेजा है। पत्नी बेचैन हो उठती है–

'हे राम आई रे गइली सवती के चिठिया हो ना।
हे राम मोर पाहुन भइले बिदेसिया हो ना।'' [44]

पत्नी ने सुना था कि पति ने वहाँ कोई सौतन रख ली है। इसीलिए तो 'पाहुन बिदेसिया' ने नहीं आने की चिट्ठी भेजवायी है। लेकिन अब सिपाही संइया तो अंतर्देशी, लिफाफे का कोई जबाब ही नहीं दे रहा है कि उसे वह चिट्ठियाँ मिली या नहीं। इसीलिए वह इस बार बैरंग ¼Bearing letter½[*] के जरिये पूछ रही है–

''मिलल कि ना, अंतरदेशी लिफाफा, इ बतइब कि ना।
बैरन में पूछतानी साफा सिपाही संइया, अइब कि ना।' [45]

उपर्युक्त गीतों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह समझ बनती है कि भोजपुरी प्रदेश से किसान मजदूर पहले कलकत्ता, आसाम, बर्मा

[44] कमला सिंह, *पूर्वांचल के श्रम लोकगीत,* (इलाहाबाद : परिमल प्रकाशन, 1991), पृ. सं. 73–74

[*] बैरंग पत्र को भेजने वाला उस पर कोई टिकट नहीं लगाता है। पावती व्यक्ति उस पत्र का डाक शुल्क चुकाता है। लोकपरंपरा में बैरंग का महत्व बहुत गंभीरता से लिया जाता है।

[45] बलम भोजपुरिया, *देवी व बलमा विहारी के सुपरहीट भोजपुरी धमाका,* पूरुवा बयार, (दिल्ली : प्रकाश पब्लिकेशन, 2006 के आसपास), हालांकि चौपटिया किताबों पर प्रकाशन वर्ष नहीं छपा होता है।

आदि जाते थे और सन् 1980 के दौर में उसकी रोजगार नगरी पंजाब–दिल्ली, सूरत, अहमदाबाद, मुम्बई इत्यादि हो गईं। 'कलकतिया' पिया को बुलाने वाली पत्नी अनपढ़ है। इसीलिए गीतों में वह स्वयं चिट्‌ठी लिखकर भेजते हुए नहीं दिखाई पड़ती है। बल्कि वह गाँव के कायस्थ या पास–पड़ोस से या अपने घर के किसी सदस्य इत्यादि से पत्र लिखवाती है। लेकिन 'रजधनिया' (दिल्ली) पिया की पत्नी में काफी बदलाव आ गया है। उसकी पत्नी पढ़ना–लिखना सीख गई है। वह स्वयं पत्र लिखकर भेजती है। इधर उसका पिया मनोरंजन के लिए अपने पसंदीदा गायकों/गायिकाओं को कैसेट, सीडी कैसेट, टी.वी., डी.वी.डी या सी.डी प्लेयर पर देखता–सुनता है। यह दौर का तकनीकी बदलाव है।

इतिहास के आइने में तथाकथित औद्योगिक दौर को डाक–व्यवस्था ने यदि *नेटिव* (गाँव) और *डेस्टीनेटीव* (प्रवास स्थान) के बीच की दूरी को कम किया था तो अब उत्तर–औद्योगिक दौर में संचार की उच्च प्रौद्योगिकी ने दूरियों और समय को पाट दिया है। यही वज़ह है कि मध्ययुग या औद्योगिक दौर के लोक में जो बारहमासा, चौमासा जैसे गीतों का रूप पाया जाता था, आज लोक उनकी रचना नहीं कर रहा है। अब अगर लोक के पास वह भाव–बोध ही नहीं रहा तो स्वाभाविक है कि उसकी लोक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति कैसे संभव हो सकती है। परंतु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि उन दिनों की सभी सांस्कृतिक विधाओं की समाप्ति हो गई है। प्रवसन से निर्मित पूर्वी लोकगीत और बिरहा आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। आज संचार माध्यमों में टेलीफोन, मोबाइल की पहुँच जनसाधारण तक हो गई है। गाँव भी अछूता नहीं रहा बल्कि वह संचार माध्यमों से लैस हो गया है लेकिन उसकी अर्थव्यवस्था वही ढाक के तीन पात की तरह है। प्रवसन जारी है। पति परदेश में हैं। पत्नी घर पर। पति की अनुस्थिति शाल (पीड़ा दे) रही है। फोन पर वह अपना दर्द बयाँ कर रही है–

''तोहे फोनवा प केतना बताईं, तोहरा मनवा के कइसे मनाईं,
बहे जब–जब पुरवइया हो, मन बिगड़े संइया हो।
घर आ जा, सजन घर जल्दी आ जा।''[46]

[46] बैजनाथ प्रसाद साह, संपा., *पवन सिंह के लोकगीत,* (दिल्ली : प्रकाश पब्लिकेशन, 2006, प्रकाशन वर्ष अनुमानित), पृ. सं. 56

फोन पर वह कितना कुछ कह सकती है। वह (पति) तो फोन पर याद करता नहीं, उसे ही याद करना पड़ता है। 'पुरबइया' हवा जब जब बहती है मन 'बिगड़ने' (भटकने) लगता है। इसलिए वह गाड़ी (रेलगाड़ी) धरकर घर आ जाए–

''आज गाड़ी ध ली महाबोधी ए राजा जी।
सुते के मनवा करे रउवा गोदी ए राजाजी।
हाथ के मोबाइल धरी पॉकीट में, फटाक ए राजा जी।''[47]

परंतु वह 'फटाक' से रेलगाड़ी कैसे धर ले? उसे शहर में कमाने के निमित्त आये हुए कितना दिन हुआ ही! कई महीने तो बेरोजगार ही रहा। कुछ और महीना काम कर ले तब घर जाने की बात सोचे। महंगाई का जमाना है। टेलीफोन बूथ जाकर पत्नी फिर अपने परदेशी पति को फोन लगाती है कहती है–

''गिर ता बिल, जान ता दिल, हम जान तानी मंहगाई बा।
बोली ए राजा जी, रउवा बोलिए में मिठाई बा।'' [48]

फोन का बिल बढ़ रहा है। इस बात को जानता है उसका दिल और दिल यह भी जानता है कि महँगाई का जमाना है। फिर भी वह उससे बोले, क्योंकि उसकी बोली में मिठाई का आंनद आ रहा है और उसका मन भरता जा रहा हैं–

''गिर ता बिल बाकि भर ता दिल, हम जान तानी मंहगाई बा।
बोली ए राजाजी, रउवा बोलिए में मिठाई बा।'' [49]

एक तरफ पत्नी का प्रवासी पति से फोन पर बात करने का आग्रह है तो दूसरी तरफ वह पति से टी.वी. लाने की माँग भी कर रही है।

---
[47] वही. 12
[48] वही. 56
[49] वही. 56

पत्नी मंहगाई के जमाने को तो जानती है लेकिन घर की गरीबी को नहीं देख रही है। पति फोन पर पत्नी से बात करते हुए इस झूमर गीत में सोचता है–

''देखत नइखी घर के गरीबी हो, धनि मांगत बाड़ी टी. बी. हो।
फोनवा प कहताड़ी जल्दी से आ जा, जल्दी तू आजा, टी.बी. लेके आजा।'' [50]

पति करे तो क्या करे। अंततः वह पत्नी को घर आने का संदेशा सुनाता हैं। पत्नी खुश होकर अपनी सहेली से इस झूमर गीत में गाती हुई कहती हैं –

''संइया छुटी ले के आवत बाड़े घरवा, तले टेलीफोन आइल हा।
हम जाये के रही नइहरवा, तले टेलीफोन आइल हा।
हम नाहीं जाइब नइहरवा, तले टेलीफोन आइल हा'' [51]

मध्यकालीन या उपनिवेशकालीन लोकसाहित्य में घोड़े पर चढ़कर आवाज़ाही करने का चित्रण खूब हुआ है। लेकिन बनिज के लिए 'बरधी' (बैलों) का इस्तेमाल होता हुआ मिलता है। प्रेम लोकगाथा 'शोभनायक बनजारा' में शोभा और उसके ससुर सोलह सौ बैलों से व्यापार करते हैं। ''रामा सोरह सौ रहे उन्ह के बरधिया रे ना।''[52] लोकगीतों में सिपाही या व्यापारी अपने घर घोड़ा पर चढ़कर आते हुए दिखाई पड़ते हैं। जैसे– *'घोड़वा चढ़ल आये, राजा के छोकड़वा।'* या *'ए राम घोड़वा चढ़ल सवदागर अइले, पानी के पियासल भइले हो राम।'* दरअसल, उन दिनों राजपूत योद्धा और घोड़ा एकाकार हो गये हैं। घोड़ा प्रतिष्ठा का प्रतीक हो गया था। आज भी भोजपुरी प्रदेश ही नहीं बल्कि समस्त उतर भारत में वह प्रतिष्ठा का प्रतीक बना हुआ है। इसके साथ ही यह भी बड़ा दिलचस्प विषय है कि किस प्रकार शौर्य की अवधारणा विकसित हुई और उसके साथ–साथ घुड़सवार योद्धा के महत्व में वृद्धि हुई। संक्षेप

---

[50] ज्योति कुमारी, गांव–कुसुम्हाँ, जिला– भोजपुर, 14 मई, 2008 (रिकॉर्ड)

[51] वही

[52] जी. ए. ग्रियर्सन, *सेलेक्टेड स्पेसीमेंस ऑफ द बिहारी लौगग्वेज, भाग–2, द बिहारी डाइलेक्ट, द गीत नयका बनजरवा,* जे.डी.एम.जी., वॉल्यूम 43, (1889), पृ. सं. 501.

में कहना चाहिए कि भोजपुरी की वीरगाथात्मक गाथाओं को उसी मानसिकता के रूप में देखा जाना चाहिए। लेकिन जो श्रमिक हैं, लोकगीतों में उनके घर आगमन के समय कोई सवारी नहीं दिखाई देती है। हाँ, उनके प्रस्थान के लिए रेल या जल जहाजों की उपस्थिति खूब मिलती है। जो औपनिवेशिक दौर को दर्शाती है। ज़रा इन गीतों पर ध्यान दें–*'रेलिया बैरन पिया को लिये जाए रे', 'रेलिया बैरी ना जहजिआ बैरी, से पइसवा बैरी ना। संइया के लेके गईल बिदेसवा, से पइसवा बैरी ना।', 'रेलिया से उतरे जहजिआ प चढ़ले पिया रंगूनवा गइले ना, हमरी झुलनी के नगीनवा पिया रंगूनवा गइले ना।', 'हमरे बलमुआ जहजिआ के नौकर फिरंगिआ के नौकर, भेज दीहिन ककही रूमाल गोरिया'* इत्यादि। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार ने 1853 ई. में रेलवे लाईन का विस्तार किया था। भोजपुरी प्रदेश में 19वीं सदी के आठवें दशक में रेलवे लाईन जनता के लिए खुल चुकी थी। उन दिनों से लेकर आज तक भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों के लिए रेलगाड़ी ही उनके *नेटिव* से *डेस्टीनेटिव* और *डेस्टीनेटिव* से *नेटिव* तक पहुँचाने में अहम रही है। रेलों के बारे अगर यह कहा जाए कि रेल श्रम–प्रवसन की प्रतीक रही है तो इसे अतिश्योक्ति में नहीं लिया जाना चाहिए।

आज खाड़ी या अन्य इंडोनेशियाई देशों में इस प्रदेश से कुशल व अकुशल श्रमिकों का पलायन हो रहा है। इस वजह से हवाई जहाज एवं सउदी अरब जैसे पद भोजपुरी लोकगीतों में प्रयुक्त होते हुए दिखाई पड़ते हैं। परंतु उसके लिए भी उन्हें दिल्ली जैसे महानगरों में रेलगाड़ी से ही प्रस्थान करना पड़ता है। इसलिए उन्हें अपने घर से एयरपोर्ट तक का सफर रेलगाड़ी से ही करना पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय एवं अंतर्देशीय प्रवसन के लिए भोजपुरी प्रदेश के जिला मुख्यालयों आरा, छपरा, सिवान, बक्सर, डुमराँव, सासाराम, मुगलसराय, गाजीपुर, बेतिया, मोतीहारी, चंपारण, देवरिया, बस्ती, बलिया इत्यादि से बड़े शहरों की ओर जाने वाली रेलगाड़ियाँ सालों भर भरी हुई आती–जाती हैं। उन गाड़ियों में जनसाधरण एक्सप्रेस, श्रमजीवी एक्सप्रेस, महाबोधी एक्सप्रेस, विभूति एक्सप्रेस, मगध एक्सप्रेस, जनसंपर्क एक्सप्रेस, जनता एक्सप्रेस, एर्नाकुलम एक्सप्रेस, लालकिला एक्सप्रेस, फरक्का एक्सप्रेस, विक्रमशिला एक्सप्रेस, महानंदा एक्सप्रेस, वैशाली एक्सप्रेस, लिच्छवी एक्सप्रेस, पुरूशोतम एक्सप्रेस, भागलपुर एक्सप्रेस इत्यादि प्रमुख हैं। यही गाड़ियाँ इस क्षेत्र के मजदूरों को दिल्ली,

पंजाब, मुम्बई, कलकत्ता, आसाम, अहमदाबाद, सूरत जैसे औद्योगिक नगरों तक पहुँचाती हैं और ये गाड़ियाँ लोकगीतों में भी आती हैं। जैसे–*'आज गाड़ी ध ली महाबोधी ए राजा जी', 'चुम्मा दे के तू छोडवलू हो, हमार मगध इसपिरेस', 'लिछवी से हमरा के घरे पहुँचाई द', 'भइया गाड़ी धइके आजा राजधानी से'* [53] इत्यादि। ये रेलगाडियाँ उन्हें जिला मुख्यालयों तक छोड़ देती हैं। परंतु वहाँ से घर पहुँचने के लिए उन्हें बस या मोटरगाड़ी लेनी पड़ती है। निम्नलिखित गीत में एक प्रवासी पति मोटरगाड़ी (मार्सल) से घर लौट रहा है–

''सब कोई आवेला अयदल पैदल, पियवा मार्सल चढ़ि आवे हो लाल।
सब कोई देखेला आजन–बाजन, पियवा हमके निरेखेला हो लाल।
रहलू तू ए धनिया राजा के लइकिया, कसबिनिया काहे बनलू हो लाल।
रउवा त रहि ए पियवा राजा के लइकवा, तू भेडूववा काहे बनल हो लाल।'' [54]

उसका पति मार्शल कार पर आ रहा है और वह उसको निरखते जा रहा है। वह देखता है कि उसकी पत्नी 'कसबिन' का वेश–भूषा बनाये हुए है। वह पूछ बैठता है कि वह तो राजा की लड़की थी, 'कसबिन' क्यों बन गई। पत्नी पफट से प्रतिप्रश्न कर बैठती है कि वह तो राजा का लड़का था, वह 'भेडूवा' (मर्यादाहीन पुरुष मतलब एक तरह से कोठे पर रहने वाला एजेंट) क्यों बन गया। इस तरह हम देखते हैं कि देवर का हाई स्कूल में पढ़ना, पति का मार्शल कार से घर आना जैसे तथ्य समसामयिक हैं। आज भोजपुरी प्रदेश में मार्शल कार से घर आना ठीक वैसे ही ताकत एवं सामाजिक प्रतिष्ठा की बात है जैसे भोजपुरी की मध्यकालीन लोकगाथाओं या गीतों में घोड़े पर चढ़कर आने वालों की होती थी। इस प्रकार भोजपुरी की मौखिक परंपरा कई अर्थों में जीवित निरंतरता में अपना विस्तार रच रही है। यह निरंतरता ही वस्तुतः उस लोक की प्राण शक्ति है। यही उसकी जिजीविषा का

[53] प्रस्तुत गीत पंक्तियाँ गायक पवन सिंह, विष्णु ओझा और देवी के गाये हुए गीतों से ली गई हैं। गौरतलब है कि भोजपुरी गायक का घर जिस रेलवे लाइन के रूट पर होता है, उसके गीतों में उसी रूट से आने जाने वाली रेलगाड़ियों का नाम आता है।

[54] ज्योति कुमारी, गांव– कुसुम्हाँ, जिला– भोजपुर, बिहार, 14 मई, 2008 (रिकॉर्ड)।

रहस्य है कि परंपरा उसके हर क्षण अपने अस्तित्व की प्रासंगिकता की खोज में जुटी रहती है, निरंतर पुर्नवा और सृजनात्मक बनी रहती है। यह बात भारतीय लोक परंपरा के संदर्भ में भी अक्षरशः लागू होती है।

देस–परदेस के लोकविश्वास एवं लोकसंस्कार

लोकविश्वास एवं लोकसंस्कार दोनों ही मौखिक परंपरा के अंग हैं। वस्तुतः ''विश्वास एवं संस्कार एक–दूसरे के आस–पास रहा करते हैं। लेकिन दोनों के बीच बहुत ही सूक्ष्म–सा अंतर होता है। विश्वास एक तरह की मानसिक व्यवस्था है, धारणा है। और उस धरणा के वशीभूत होकर जब हम कुछ करते हैं। तो वही संस्कार में बदल जाता है। विश्वास और संस्कारों के उद्भव के मूल में होते हैं– आशंका और भय। क्षय और क्षति का भय व आशंका। लोकसमाज अशुभ और अमंगल से रिहाई पाने के उद्देश्य से नानाविध संस्कारों का आश्रय लेता है।''[55] भोजपुरिया श्रमिक–व्यापारियों, सिपाहियों, मजदूरों के प्रवसन की परंपरा को समझने में उनकी यात्रा संबंधी लोकविश्वास एवं लोकसंस्कार भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहां यह महत्वपूर्ण सवाल है कि भोजपुरी की मौखिक परंपरा में प्रवास यात्रा के लिए उनके किन लोकविश्वासों एवं संस्कारों की अभिव्यक्ति मिलती है? समकालीन दौर में उनमें क्या परिवर्तन आये हैं और कौन से विश्वास एवं संस्कार अभी बने हुए हैं? इन चंद सवालों से मुखातिब होने के लिए घाघ और भड्डरी* जैसे लोक कवि हमें मदद करते हैं। इन दोनों ने यात्रा संबंधी विश्वासों एवं संस्कारों की जो समझ बनायी है, उनका समस्त भोजपुरिया समाज अनुपालन करता रहा है। रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामसाहित्य के संकलन में इन दोनों लोककवियों के मौखिक लोकोक्तियों को शामिल किया है। लोकसमाज में प्रचलित घाघ एवं भड्डरी की कहावतें जिन विश्वासों का निर्माण करती हैं एवं जिन संस्कारों को करने के लिए प्रेरित करती

[55] पीयुष दहिया, संपा. *लोक*, लेख–मानस मजमूदार, (उदयपुर : भारतीय लोक कला मंडल, 2001), पृ. सं. 309।

* कहा जाता है कि घाघ और भड्डरी बादशाह अकबर के जमाने में पैदा हुए थे। दोनों की जन्मभूमि के बारे में कोई पुख्ता जानकारी नहीं मिलती है। परंतु अधिकांश भोजपुरी लोकोक्तियाँ इन दोनों के नाम से प्रचलित है। कुछ कहावतों में इन दोनों के नामों का उल्लेख पाया जाता है।

हैं, उनसे पता चलता है कि किस दिन किस दिशा में यात्रा करनी चाहिए, किस दिशा में किस समय और क्या खाकर जाना चाहिए? प्रस्थान करते समय कौन–सा दृश्य किस बात का प्रतीक होता है। यात्रा संबंधि ये प्रतीक काबिले गौर हैं–

'मंगर बुद्ध उत्तर दिसि कालू।
सोम सनीचर पुरब न चालू।
जे बिहफे को पनही खाय।' [56]

यानी मंगलवार और बुधवार को उत्तर दिशा में, सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा में दिशा–शूल होता है। बृहस्पतिवार को जो दक्षिण जाता है, वह बिना अपराध के ही जूता खाता (दंड पाता) है।

'बुध कहैं मैं बड़ा सयाना।
मोरे दिन जिनि किहसो पयाना।
कौड़ी से नहिं भेंट कराउं।
खेम कुसल से घर पहुचाउं।
एक पहर जो परखै मोहिं।
सोने क छत्र धराउं तोहिं।' [57]

अर्थात् बुधवार कहता है कि मैं बड़ा चतुर हूं। लेकिन मेरे दिन कहीं जाना मत। मैं कौड़ी से भी भेंट नही होने देता हूँ। क्षेम–कुशल से घर जरूर पहुँचा देता हूँ। पर तुम एक पहर तक रूककर चलोगे, तो तुम्हारे सिर पर सोने का छत्र धरा दूँगा अर्थात् तुम्हारा काम सिद्ध कर दूँगा।

'पुरूबे गुधूली पश्चिम प्रात।
उतर दुपहर दक्खिन रात।।

---

[56] रामनरेश त्रिपाठी, *ग्राम साहित्य, तीसरा भाग,* (*दिल्ली :* आत्मा राम एण्ड संस, 1953), पृ. सं. 189 इसे भी देखिये, विष्णुकांत पाठक, संपा., *घाघ भड्डरी की कहावतें,* (दिल्लीः प्रकाश पब्लिकेशन, प्रकाशन वर्ष नहीं अकित है)।

[57] वही, 189

का करै भद्रा का दिकसूल।
कहै भड़र सब चकना चूर।।' [58]

मतलब, पूर्व दिशा में जाना हो तो गोधूली के समय, पश्चिम को प्रातः काल, उत्तर को दोपहर में और दक्खिन को रात में प्रस्थान करें तो न भद्रा का डर, न दिशा–शूल का ।

'रवि ताम्बुल सोम के दरपन। सोमवार गुर धनियां चरवन।।
बुध मिठाई बहके राई। सुक्रफ कहै मोहि सुहाई।।
सनी बाउभिरंग भावै। इन्द्रो जोति पुत्र घर आवै।।' [59]

यानी रविवार को पान खाकर, सोमवार को दर्पण देखकर, मंगलवार को गुड़ धनिया चबाकर, बुध को मिठाई, बृहस्पतिवार को राई, शुक्र को दही और शनिवार को बाउभिरंग खाकर यात्रा करनी चाहिए। ऐसा करने से बेटा इन्द्र को भी जीतकर घर वापस आयेगा।

'रवि दिन वास चमार घर, ससि दिन नाई गेह।
मंगल दिन काछी भवन, बुध दिन रजक सनेह।।
गुरू दिन ब्राह्मण के बसै, मृगु दिन वैश्य मझाँर।
सनि दिन बेसवा के वसै, भड्डर कहै विचार।।' [60]

अर्थात् रविवार को चमार के घर, सोमवार को नाई के घर, मंगलवार को काछी के घर, बुधवार को धोबी के घर, वृहस्पतिवार को ब्राह्मण के घर, शुक्रवार को वैश्य के घर और शनिवार को वेश्या के घर प्रस्थान रखना चाहिए। यात्रा के समय दिशा–शूल और प्रवास के लिए प्रस्थान करने के नियम–पालन के समय सिवा अच्छे–बुरे शकुनों का भी विचार किया जाता है। शकुन–संबंधी कतिपय कहावतें द्रष्टव्य हैं:–

'सगुन सुभासुभ निकट हों, अचता दूर।
दूर–दूर निकटै निकट, समझो फल भरपूर।।' [61]

---

[58] वही, 189

[59] वही, 190

[60] वही, 189

[61] वही, 189

अर्थात् शुभ और अशुभ–शकुन जितने निकट और दूरी पर होंगे, उनके फल भी उतने ही निकट और दूर होंगे।

'नारि सुहागिन जल घर लावै। दधि मछली जो सनमुख आवै।।
सनमुख धेनु पिआवै बाछा। मंगल करन सगुन हैं आच्छा।।' [62]

यदि सुहागिन स्त्री जल से भरा हुआ घड़ा लेकर आती हो, सामने से दही या मछली लेकर कोई आता हो और गाय अपने बछड़े को दूध पिला रही हो, तो ये शकुन मंगलकारी हैं।

'चलत समै नेउरा मिलि जाय। वाम भाग चारा चखु खाय।।
काग दाहिने खेत सुहाय। सफल मनोरथ समुझहु भाय।।' [63]

अगर यात्रा के समय नेवला मिले, नीलकंठ पक्षी बायीं तरफ चारा खा रहा हो और कौवा दाहिनी ओर हो, तो मनोरथ सिद्ध समझो।

'लोमा फिरि फिरि दरस दिखावै। बायें ते दहिने मृग आवै।।
भड्डर ऋषि यह सगुन बतावै। सगरे काज सिद्ध होई जावै।।' [64]

लोमड़ी बार–बार दिखाई पड़े, हिरण बायें से दाहिने ओर जायें, तो सब कार्य सिद्ध होंगे।

'गमन समयजोस्वान।
फड़फडाय के कान।
तो भी सगुन अकारथ जान।।' [65]

यात्रा के समय कुत्ता कान फड़फडाये, तो शकुन शुभ नहीं होगा। कार्य सिद्ध नहीं होगा।

---

[62] वही, 191

[63] वही, 191

[64] वही, 191

[65] वही, 192

'एक सुद्र दो वैस असार। तीन विप्र और छत्री चार।
सनमुख आवै नौ नार। कहै भड़र असुभ विचार।' [66]

अर्थात् यात्रा के समय यदि एक शूद्र, दो वैश्य, तीन ब्राह्मण, चार क्षत्रिय और नौ स्त्रियाँ सामने आती हुई मिलें, तो अशुभ है।

'भैंसि पाँच पट स्वान। एक बैल एक बकरा जान।।
तीन धेनु गज सात प्रमान। चलत मिलें मति करो पयान।।' [67]

मतलब, चलते समय पाँच भैंस, छः कुत्ते, एक बैल, एक बकरा, तीन गायें और सात हाथी सामने मिले तो रुक जाना चाहिए।

'स्वान धुनै जो अंग, अथवा लोटै भूमि पर।
तौ निज कारण भंग, अतिही कुसगुन जानिये।।' [68]

अर्थात् यात्रा के समय कुत्ता अपना शरीर फड़फड़ाये या भूमि पर लोटता दिखाई दे, तो बड़ा अपशकुन समझना चाहिए, कार्य की हानि अवश्य होगी।

'सूके सोमे बुद्ध बाम। यदि स्वर संका जीते राम।
जो स्वर चलै सोई पग दीजै। काहेक पंडित पत्रा सीजै।।' [69]

अर्थात् शुक्रवार, सोमवार और बुधवार को बायें स्वर में काम आरंभ करने से सिद्ध होता है। राम ने इसी स्वर में लंका जीती थी। बायाँ स्वर चले तो बायाँ पैर आगे रखना चाहिए, दाहिना चले तो दाहिना पैर इसी से कार्य सिद्ध होगा। पंचांग देखकर चलना व्यर्थ ही है।

अब तक मैंने घाघ भड्डरी जैसे लोक कवियों के माध्यम से भोजपुरिया लोगों के प्रवसन करते समय के संस्कारों एवं लोकविश्वासों (कई अर्थों

[66] वही, 192
[67] वही, 192
[68] वही, 192
[69] वही, 192

में अंधविश्वास भी कह सकते हैं।) को देखने का प्रयास किया। अब मैं यह देखने की कोशिश कर रहा हूँ कि वर्तमान दौर में उन लोकविश्वासों एवं लोकसंस्कारों को लोग कितना अनुसरण करते हैं। रामबली सिंह फेरहा* घर से बाहर निकलते समय के अपने संस्कारों एवं विश्वासों के बारे में बताते हैं। *''घर से निकलते समय सूर्य भगवान को 'गोड़' लागते थे और फिर उसके बाद घर के बड़े बुजुर्ग का पैर छूते थे। देवताओं को हमलोग गोड़ तो लागते ही थे। लेकिन घर में माता पिता हैं तो देवताओं का क्या पैर छूना। मेरा तो ऐसा ही विचार है। लदनी के लिए हम सब सुबह चार बजे भोर में ही निकल जाते थे। ताकि किसी से मुलाकात न हो। यात्रा के लिए जरूरी है कि कोई आगे न पड़े। कोई टोके बोले मत। हमारी यात्रा सफल हो। कई बार यात्रा करते समय कोई जानवर रास्ता काट देता था जैसे कि सियार, ऐसे में हम धरती पर पैर से लकीर बनाकर काट देते थे। चाहे हवा में हाथ से घुमाकर काट देते थे। ताकि 'जातारा' सफल हो सके। घर से निकलते वक़्त घर की औरत दाहिने साईड में बाल्टी में पानी भर कर रख देती थी और वहाँ से हट जाती थी। यात्रा के लिए एक बड़ी प्रसिद्ध कहावत है न– ''करकट बुजकट कतरल केस, राह चलत में लागे ठेस। / जे केहु पूछे जइब कहँवा, बनलो काम नसाई तहँवा'' मतलब यात्रा के समय बुजकट (टूटा हुआ) बर्तन, हथकटा और सिर मुँड़ाया हुआ व्यक्ति दिखाई दे और रास्ता चलते ठोकर लग जाय तथा कोई यह पूछकर कि कहाँ जा रहे हो? टोक दे, तो बना काम भी बिगड़ जाता है। तो मैं इन सब चीजों का ध्यान रखता था।''*[70] एक और फेरहा बैजू सिंह का कुछ अलग ही कहना हैं–''लदनी खातिर सोमार मंगर ना लागल रहत रहे बाकि मानदिन** बरावे के परत रहे।

---

*भोजपुरी प्रदेश में फेरहा उन पशु व्यापारियों को कहते हैं जो गाय, भैंस, पाड़ा–पाड़ी एवं बैलों की खरीद–फरोख्त करते हैं। उनकी यह खरीद फरोख्त मेला से मेला तक और मेला से गाँवों में घूम घूमकर होती है।

[70] यह साक्षात्कार मैंनें टिकठी गाँव, जिला–भोजपुर, बिहार में एक जनवरी, 2011 को लिया था।

**परिवार में किसी वरिष्ठ व्यक्ति के मृत्यु दिवस ही मानदिन होता है। यह दिवस प्रत्येक सप्ताह में परिवार द्वारा मनाया जाता है। इसका कोई संस्कारकर्म नहीं है बल्कि इस दिन कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता है।

कबो कबो ओकरों खातिर एक दिन पहिलहिंये से पाँयत*** हो जात रहे।''[71] दिल्ली (गुडगाँव) में सुरक्षा गार्ड की नौकरी करने वाले भोजपुरिया महेश[72] इन विश्वासों को नहीं मानते हैं। लेकिन उनका परिवार घर से निकलते समय उन विश्वासों एवं संस्कारों को मानता है। यही वजह है कि कई बार महेश को घर वालों ने मानदिन या खरवांस में गाँव से बाहर (दिल्ली, रांची इत्यादि डेस्टीनेटिव जगह को) नहीं जाने दिया है।

आज गाँवों में यह सामान्य विश्वास है कि यात्रा के समय दही खाकर प्रस्थान करना शुभ होता है। दर्पण में मुँह देखकर जाना भी शुभकारक है। कुछ लोग मछली का दर्शन करना भी मंगलकारक मानते हैं। प्रस्थान के समय किसी का छींकना अशुभ है। यदि कोई यात्रा पर जा रहा हो तो उसे रोकना अथवा कुछ पूछना तो निषिद्ध है ही। यदि जाते समय बिल्ली रास्ता काट दे अर्थात् सामने से चली जाय तो यह अमंगलकारक है। अतः प्रस्थान करते समय उस व्यक्ति को दर्पण में अपना मुँह देखकर तथा दही खाकर जाना चाहिए। यदि जलपूर्ण घड़ा दिखायी पड़े तो यात्रा शुभ तथा कार्य में सफलता मिलती है। ऐसा नहीं है कि उपर्युक्त विश्वासों एवं संस्कारों को अपने जीवन में उतारने वाला, केवल प्रवास करने वाला भोजपुरिया श्रमिक समुदाय था बल्कि इनका अनुपालन समग्र भोजपुरी समाज करता है– चाहे वह तीर्थ स्थान जा रहा हो या फिर मेला–बाजार, चाहे रिश्तेदारी में जा रहा हो या फिर कोर्ट कचहरी, चाहे वह चोरी ही करने क्यों न जा रहा हो। सभी के लिए ये लोकविश्वास एवं संस्कार मूल्यवान हैं। परंतु विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में उनमें कमी आयी है।

***घर परिवार में जिस दिन मानदिन होता है और उसी दिन परिवार के किसी सदस्य को यदि यात्रा करना है तो इसके लिए घर से एक दिन पहले ही पाँयत (प्रस्थान) करना पड़ता है। पाँयत का संस्कार कर्म इस तरह होता है कि मानदिन के एक रोज पहले प्रस्थान करने वाला व्यक्ति अपना कोई वस्त्र किसी दूसरे के घर रख देता है। इससे मान लिया जाता है कि वह व्यक्ति मानदिन को न जाकर एक रोज पहले ही चला गया है।

[71] गाँव कुसुम्हाँ, जगदीशपुर, भोजपुर में 20 सितंबर, 2007 को बातचीत पर आधारित।

[72] गाँव कुसुम्हाँ, जगदीशपुर, भोजपुर निवासी महेश (42 वर्षीय) से 23 मार्च, 2011 को मैंने फोन के जरिये घर से निकलते समय के लोक संस्कारों के बारे में बातचीत किया।

निष्कर्ष:

मजदूरों का प्रवसन न तो अकेले भारत में हो रहा है, न आज पहली बार। सभ्यता के प्रारंभ से ही कामगारों–व्यापारियों की आवाजाही होती रही है। परंतु आज भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दुस्तान में मजदूरों को प्रवासी बनाने वाली स्थितियाँ और वजहें बिल्कुल अलग किस्म की हैं। उनका स्वरूप इस कदर अलग है कि उनसे एक नये घटनाक्रम का आभास होता है। अब तक के इतिहास में शायद ही कभी, लाखों नहीं, करोड़ों की संख्या में मजदूर अपना घर–बार छोड़कर कमाने, पेट पालने और अपने आश्रितों के भरण पोषण के लिए देस–परदेस निकल पड़े हैं। यह कोई और नहीं, बल्कि वर्तमान भारत के भोजपुरिया मजदूर हैं जो पलायन तो करते हैं, प्रवास में बसते नहीं। अपनी जड़ से नाभिनलबद्ध रहते हैं। कमाते हैं, घर भेज देते हैं।[73] संकट में, बुढ़ापे में, बीमारी में घर लौट आते हैं। इन्हीं की कमायी इस क्षेत्र को जिलाये रखती है। इनकी यह त्रासद स्थिति उन मजदूरों से कहीं ज्यादा है, जो बाहर गये और वहीं के होकर रह गये। यही वजह है कि भोजपुरी लोकसंस्कृति में इनकी उपस्थिति सदियों से रही है और इनकी मौजूदगी आज पहले की अपेक्षा बढ़ भी गई है। बहुत बड़ी संख्या होने से इनकी सांस्कृतिक अभिरूचियों पर बाजार की आंख लग गई है। यही वजह है कि भारी मात्रा में आज भोजपुरी लोकगीत, फिल्में या अलबम जैसे सांस्कृतिक उत्पादों का निर्माण हो रहा है।

---

[73] बीबीसी हिंदी की खबर: *सिवान बिहार का सबसे धनी डाकघर,* मंगलवार, 26 अप्रैल, 2011 को 13:51: ''बिहार के सिवान जिला डाकघर ने लगातार तीसरे साल वेस्टर्न यूनियन के जरिये सबसे ज्यादा 35600 मनीआर्डर पाने का रिकॉर्ड बनाया है। दूसरे नंबर पर गोपालगंज रहा जिसे 24800 मनीआर्डर मिले हैं, तीसरा स्थान मोतीहारी और दरभंगा के डाकघरों का है जहां इस साल क्रमशः 21000 और 20000 मनीआर्डर पहुंचे हैं।... पूरे भारत में अंतर्राष्ट्रीय मनीआर्डर पाने में इस साल बिहार का चौथा स्थान रहा। लेकिन जहां तक दूसरे देशों को मनीआर्डर भेजने की बात है बिहार दूसरे राज्यों के आगे कहीं नहीं टिकता।''

संदर्भसूची

प्राथमिक–स्रोत

लोकसाहित्य का निजी संकलन (मौखिक, लिखित, ऑडियो व वीडियो)

कैसेट्स

सिन्हा, शारदा, (1985), *केकरा से काहाँ मिले जाला,* टी–सीरिज सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज़ लि., नोएडा।

राजभर, बेचनराम, (*1995*), *पारंपरिक भोजपुरी लाचारी,* टी–सीरिज सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज़ लि., नोएडा,।

लाल, खेसारी, (2009), *बलमा रहेला हमार सउदी रे भौजी,* वीडियो कैसेट अलबम, एंगल म्यूजिक, दिल्ली।

रानी, गीता, (2002), *छौड़ा सब कुछ मांगेला,* कैसेट अलबम, टी–सीरिज, दिल्ली 7 अक्टूबर, 2005 को अज्ञात आडियो कैसेट से पेनआउट (निजी संग्रह)

चौपटिया पुस्तकें (Chapbooks)

सिंह बाबू महादेव प्रसाद, संकलन–असली भरथरी चरित्र, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

पं. रंगलालजी, असली शुद्ध किस्सा तोता मैना (आठो भाग), प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

सिंह महादेव प्रसाद, सत्य कथा बाला लखंदर उर्फ बिहुला विषहरी, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

सिंह महादेव प्रसाद, असली बिहुला बिषहरी (संपूर्ण नौ खंड), प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

राय राम अयोध्या व प्रसाद जोगेन्दर, वीर कुँवर विजई (संपूर्ण पैंसठ भाग), नारायण एंड को. बुक सेलर्स, पटना

प्रसाद परमहंस व प्रसाद रामप्रवेश, लचिया रानी का गीत (बारहो भाग), प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

प्रसाद परमहंस व प्रसाद रामप्रवेश, रानी रेशमा चुहड़मल का गीत (बीसों भाग संपूर्ण), प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली।

सोरठी बृजाभार, संकलन–सिंह बाबू महादेव प्रसाद, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली।

सिंह बाबू महादेव प्रसाद, संकलन–रानी सारंगा सदावृज का गीत, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

कुमार नितेश, संग्रहकर्ता–गीत रानी सारंगा, प्रकाशक–ज्ञान गंगा एंड कं. पब्लिसर्श, दिल्ली

सिंह बाबू महादेव प्रसाद, संकलन–हिरनी–बिरनी या पोसन सिंह का गीत, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

कुमार रविन्द्र, संग्रहकर्ता–विक्रम बैताल बैताल पच्चीसी, न्यू रवि प्रकाशन, दिल्ली

जालिम सिंह नाटक, सिंह रामधारी, ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार, कचौड़ी गली, वाराणसी

पाठक विष्णुकांत, संपादनकर्ता–घाघ भडडरी की कहावतें, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

बड़ा भिखारी नाटक–ठाकुर भिखारी, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

सं.– राजीव नयन सिंह, बलम भोजपुरिया, देवी व बलमा बिहारी के सुपरहिट भोजपुरी धमाका, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

कुमार अभय, संग्रहकर्ता–कल्पना के गाये भोजपुरी लोकगीत, मंगला प्रकाशन, दिल्ली

बैजनाथ प्रसाद, संकलन–मुन्ना सिंह के भोजपुरी लोकगीत, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

साह बैजनाथ प्रसाद, संपादक–पवन सिंह के लोकगीत, प्रकाश पब्लिकेशन, दिल्ली

संकटा माता की व्रतकथा,

(**नोट** : *मौखिक परंपरा के इन लिखित दस्तावेजों पर प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं हुआ है।*)

साक्षात्कार

रामबली सिंह, (फेरहा–पशु व्यापारी), 1 जनवरी, 2011 टिकठी गाँव, भोजपुर, बिहार

बैजू सिंह, (फेरहा–पशु व्यापारी), 1 जनवरी, 2011 कुसुम्हाँ गाँव, भोजपुर, बिहार

ज्योति कुमारी, 14 मई, 2008 (रिकॉर्ड), गांव–कुसुम्हाँ, जिला भोजपुर, भोजपुर,

पहलाद रामषरण (इतिहासकार व साहित्यकार), 25 फरवरी, 2011, बो बांसे, मॉरीशस

साधुचरन, दुखिया और रामफल (सुरक्षा गार्ड), 17 फरवरी, 2011, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

सहायक स्रोत

अनेजा, अतुल (22 मई, 2007), ग्रोईंग एसर्सन ऑफ एसियन वर्कर्स इन द गल्फ, द हिन्दू, डेली इंगलिश न्यूजपेपर, दिल्ली

अनत, अभिमन्यु (1977), *लाल पसीना,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

मोहन, अरविंद (1998), *प्रवासी मजदूरों की पीड़ा,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

चिचेरोव, ए. आई (2003), *मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना,* अनु.–मंगलनाथ सिंह, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली

सिंह, कमला (1991), *पूर्वांचल के श्रम लोकगीत,* परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

चौधरी, केदार (1993), *भिखारी ठाकुर के नाटकों में लोकजीवन,* जे. एन. यू., एम. फिल. शोधकार्य, अप्रकाशित, दिल्ली

श्रेवर, कैथरिन सरवन (2001), *द ट्रांसमिशन ऑफ भोजपुरी एपीक्स टूवर्डस नेपाल एंड बंगाल ओरल परफोरमेंस एंड सेलिंग ऑफ चैपबुक्स,* सपां. मॉली कौशल, चांटेड नैरेटिव्स द लीविंग 'कथा वाचना' ट्रेडीसन, आई जी सी एन ए, दिल्ली

श्रेवर, कैथरिन सरवन (2003), टेलर्स ऑफ टेल्स, सेलर्स ऑफ टेल्स इन सोसायटी एंड सर्कुलेशन मोबाइल पीपूल एंड इटीनरेंट कल्वर्स इन साउथ एशिया 1750–1959, (संपा. साइक्लोडे मरकोइटस, जैक्स पॉचेपेदास एंड संजय सुब्रमण्यम), परमानेंट ब्लैक, दिल्ली

उपाध्याय, कृष्णदेव (1966), *भोजपुरी लोकगीत, भाग–2,* लोकसंस्कृति शोध संस्थान, प्रयाग

उपाध्याय, कृष्णदेव (1990), *हिन्दी प्रदेश के लोक (ग्राम) गीत,* साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद

सेन, जॉहर (1977), इंडो–नेपाल ट्रेड इन द नाइनटीनन्थ सेन्चुरी, फीमा के ए एम प्राईवेट लि., कलकत्ता

ग्रियर्सन, जी. ए. (1889), सेलेक्टेड स्पेसीमेंस ऑफ द बिहारी लॉन्गवेज, भाग–दो, द बिहारी डायलेक्ट, द गीत नयका बनजारवा, जे डी एम जी, वॉल्यूम 43

ग्रियर्सन, जी. ए. (1884), सम बिहारी फॉक सांग्ज, जे आर ए एस, न्यू सीरिज, वॉल्यूम 15, नं 2

ग्रियर्सन, जी. ए. एंड पीचर मेजर (1883), इनक्वॉरी इनटू इमीग्रसेन प्रोसिडिंग्स नं. 9–15, रेवेन्यू एंड एग्रीकल्चरल डिपार्टमेंट

सनाढ्य, तोताराम (1994), *भूतलेन की कथा*, संपा. योगेन्द्र यादव व ब्रिज वी लाल, सरस्वती प्रेस, दिल्ली

चक्रवर्ती, दीपेश (1989), रीथिंकिंग वर्किंग क्लास हिस्ट्री–बंगाल 1890–1990, ओ यू पी, दिल्ली

वर्मा, धीरा (2000), *गगनांचल*, अप्रैल–जून, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, दिल्ली

सिंह, नागेन्द्र प्रसाद एवं यादव वीरेन्द्र नारायण सिंह (2005), संपा., *भिखारी ठाकुर रचनावली*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

प्रेमचंद (1925), कहानी 'शुद्रा',

रामशरण, पहलाद (1988), *मॉरीशसः हिन्दमहासागर में एक नवोदित राष्ट्र*, राजपाल एंड संस, दिल्ली

रामशरण, पहलाद (1989), *मॉरीशस की शकुंतला*, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली

बर्नियर, फैंकिस (2001), *बर्नियर की भारत यात्रा*, अनुवाद–गंगा प्रसाद गुप्त, एन. बी. टी., दिल्ली

लाल, ब्रिज वी (2000), *चलो जहाजी : ए जर्नी थ्रू इनडेंचर इन फीजी*, ऑस्टेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा

लाल, ब्रिज वी (2005), *फीजी यात्रा : आधी रात से आगे*, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली

बीबीसी हिंदी की खबरः *सिवान बिहार का सबसे ध्नी डाकघर*, मंगलवार, 26 अप्रैल, 2011 को 13:51

कृष्ण, मनोज (28 नवंबर, 2006), *खुदखुशी की खाड़ी*, जनसता, दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, दिल्ली

मजमूदार, मानस (2001), *लोक*, संपा., भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर

मोतीचंद्र (1953), *सार्थवाह*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

त्रिपाठी, रामनरेश (1953), *ग्राम साहित्य, तीसरा भाग*, आत्मा राम एण्ड संस, *दिल्ली*

रजा, राही मासूम (1966), *आधा गाँव*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

अमीन, शाहिद, संपा. (2005), ए कॉनसाइज इनसाईक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाईफ, मनोहर पब्लिशर्स, दिल्ली

फ्रेजर, हूज (1883), द फोकलोर फ्रॉम ईस्टर्न गोरखपुर (न्यू), जे ए एस बी बी, पार्ट 1, नं 1, कलकता

मिश्र, श्रीधर (1971), *भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन,* हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद

वेबसाइट्स www.nlb.gov.sg/biblioasia/vol.3/ no.3/Oct-2007